RNI No.: MPHIN/2018/77137
ISSN 2582-483X

पाठशाला भीतर और बाहर

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-4 अंक-10 दिसम्बर 2021
तिमाही, भोपाल



पाठशाला
भीतर और बाहर

दिसम्बर, 2021 (वर्ष 4, अंक 10)

सम्पादक मण्डल

- **हृदयकान्त दीवान**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज,
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा,
  बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  hardy@azimpremjifoundation.org
  मो. 9999606815

- **मनोज कुमार**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज,
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा,
  बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  manoj.kumar@apu.edu.in
  मो. 9632850981

- **गौतम पाण्डेय**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. ए 413-415
  सिद्धार्थनगर-ए, होटल नाँगीस प्राइड के सामने
  जवाहर सर्किल के पास, जयपुर, राजस्थान
  gautam@azimpremjifoundation.org
  मो. 9929744491

- **सी एन सुब्रह्मण्यम**
  मुख्य डाकघर के पीछे
  कोठी बाज़ार,
  होशंगाबाद, म.प्र. 461001
  subbu.hbd@gmail.com
  मो. 9422470299

- **अभय कुमार दुबे**
  विकासशील समाज अध्ययन पीठ
  (सीएसडीएस)
  29, राजपुर रोड,
  दिल्ली-110054
  abhaydubey@csds.in
  मो. 9810013213

- **आवरण चित्र :** सुमैया फरवी
- **आवरण डिज़ाइन :** गणेश ग्राफ़िक्स

कार्यकारी सम्पादक

- **गुरबचन सिंह**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसायटी,
  ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा, भोपाल 462039
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

- **रजनी द्विवेदी**
  द्वारा-अमित जुगरान
  प्रताप भवन, मसूरी पब्लिक स्कूल,
  झूला घर के पास, मसूरी 248179 उत्तराखंड
  ritudwi@gmail.com
  मो. 9101962804

- **जगमोहन कठैत**
  अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन
  भंडारी भवन , गोला पार्क
  श्रीनगर, पौड़ी, उत्तराखंड
  पिन 246174
  jagmohan@azimpremjifoundation.org
  मो. 9456591204

- **सुनील कुमार साह**
  एम-13, अनुपम नगर
  टीवी टॉवर के पास, शंकर नगर,
  रायपुर 492007
  sunil@azimpremjifoundation.org
  मो. 8305439020

सम्पादकीय सहयोग

- **अनिल सिंह**
  एस-2, स्वप्निल अपार्टमेंट नं. 5
  प्लाट नं. ई-8/31-32, त्रिलोचन सिंह नगर
  भोपाल, म.प्र. 462039
  bihuanandanil@gmail.com
  मो. 9993455492

- **रंजना**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  एम-32-33/ एम-2, कुशल बाज़ार बिल्डिंग
  नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-19
  ranjna@azimpremjifoundation.org
  मो. 9871900112

विशेष सहयोग

- **प्रदीप डिमरी**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  जिला संस्थान देहरादून,
  खसरा नंबर 360 (ख),
  तरला आमवाला, मधुबन एन्क्लेव,
  देहरादून, उत्तराखंड 248008
  pradeep.dimri@azimpremjifoundation.org
  मो. 9456591353

रिव्यु पैनल

अमन मदान दिशा नवानी यतीन्द्र सिंह
अंकुर मदान राजीव शर्मा सुशील जोशी
विश्वंभर रेवा यूनुस बॉबी आबरोल
टुलटुल बिस्वास नवनीत बेदार हिलाल अहमद
कॉपी एडिटर : अतुल अग्रवाल

प्रकाशक

Azim Premji University

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी.नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का उपयोग शैक्षणिक और ग़ैर-व्यावसायिक कार्यों के लिए किया जा सकता है।
लेकिन इसके लिए लेखक एवं प्रकाशक से अनुमति लेना एवं स्रोत का उल्लेख अनिवार्य है।

सम्पादकीय

पिछले दो वर्षों से कोरोना के कारण बच्चों की ज़िन्दगी पर बहुत असर पड़ा है। स्कूल आधे-अधूरे से खुले हैं और उनपर हर पल बन्द होने की अनिश्चितता का साया बना हुआ है। स्कूलों में और कई जगह बच्चों के साथ कार्य के कई तरह के प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों में कई नई बातें जानने, समझने को भी मिली हैं। यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि स्कूल बच्चों के जीवन का कई तरह से अहम हिस्सा हैं। वह न सिर्फ़ अकादमिक विकास में वरन् सामाजिक, मानसिक और शारीरिक विकास में भी अहम भूमिका निभाते हैं। इस महामारी और इस अनिश्चितता का अभी अन्त नहीं हुआ है और जो मौजूदा स्थितियाँ हैं उनमें हमें लगातार नए प्रयोग कर बच्चों के लिए उपयुक्त अनुभव बनाते रहने की आवश्यकता है। इसके लिए एक दूसरे के प्रयासों व अनुभवों से सीखते रहने की आवश्यकता है। हम चाहेंगे कि इस दौर में आपने जो नया महसूस किया और सीखा वह इस पत्रिका के माध्यम से अन्य लोगों से भी साझा करें। पत्रिका का अगला अंक गणित सीखने-सिखाने पर केन्द्रित है, अतः उस सन्दर्भ में अपने नए-पुराने प्रयासों व अनुभवों को विश्लेषणात्मक ढंग से लिखकर भेजेंगे तो सभी को उनपर विचार करने का मौक़ा मिलेगा।

पाठशाला का दसवाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। **परिप्रेक्ष्य** स्तम्भ के अन्तर्गत विजय प्रकाश जैन का आलेख है, *जेंडर और बच्चे : प्राथमिक कक्षा के बच्चों से बातचीत का एक अनुभव।* लेखक ने कक्षा में बच्चों के साथ बनाई गई एक कहानी को आधार बनाकर समाज में प्रचलित जेंडर असमानता और संवैधानिक मूल्यों पर समझ बनाने की अपनी कोशिश का अनुभव बयाँ किया है। आलेख बताता है कि प्राथमिक स्तर के बच्चे भी घर और समाज में मौजूद जेंडर की रूढ़ धारणाएँ लेकर आते हैं, अगर इनपर बातचीत न हो तो ये धारणाएँ धीरे-धीरे गहरी होती चली जाती हैं। इनपर बच्चों के साथ गम्भीरता से परन्तु सहज क्रम से बातचीत करने की ज़रूरत होती है।

शिक्षणशास्त्र स्तम्भ के अन्तर्गत इस अंक में 7 आलेख हैं। *मैं महापल्ली में रहता हूँ* आलेख में मीनू पालीवाल शुरुआती पढ़ना-लिखना सीख रहे एक बच्चे की लिखावट के नमूने का विश्लेषण करते हुए लिखना सीखने की बारीक़ियों के बारे में बात करती हैं। ये आलेख शुरुआती लेखन के आकलन की एक समुचित दृष्टि देता है। इस आकलन के आधार पर शिक्षक बच्चों के लेखन कौशल पर तार्किक और सुनियोजित ढंग से काम करने की समझ बना सकते हैं।

इसी स्तम्भ का दूसरा आलेख *भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं, चलो पता लगाएँ* नीतू यादव ने लिखा है। कक्षा में बच्चों के साथ 'भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं' कहानी पर चर्चा के माध्यम से नीतू यादव ने बच्चों के अनकहे डर, भ्रान्तियों, अफ़वाहों और धारणाओं की बारीक़ परतों को खोलने का प्रयास किया है।

तीसरा आलेख *कहानियाँ आख़िर करती क्या हैं?* में लेखक ने कहानियों के शिक्षाशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय महत्त्व और प्रभाव का ब्योरा प्रस्तुत किया है। इसके लिए लेखक अनिल सिंह ने अपनी कक्षा में बच्चों के साथ कहानी कहने-सुनने के तीन अनुभवों को आधार बनाया है।

इस स्तम्भ का चौथा आलेख *पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति के मेरे अनुभव : सन्दर्भ विज्ञान शिक्षण* शिव पाण्डेय का है। इस लेख में लेखक ने विज्ञान की श्वसन अवधारणा पर बच्चों के साथ काम करने के लिए पीयर इंस्ट्रक्शन पद्धति को काम में लेने के अपने अनुभव प्रस्तुत किए हैं। यह पद्धति क्या है, इसे काम में लेते हुए शिक्षक को क्या-क्या तैयारी करनी पड़ती है, आदि के साथ ही उन्होंने इसकी योजना और चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला है। लेखक का कहना है कि यह पद्धति उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में बहुत ही कारगर है। अगला आलेख *बाल साहित्य की ज़रूरत,* बाल साहित्य के इस्तेमाल की आवश्यकता को रेखांकित करता है। लेखिका हेमवती चौहान विभिन्न कहानियों एवं किताबों के साथ किए गए काम का अनुभव रखते हुए इस बात पर ज़ोर देती हैं कि पढ़ने का आनन्द हर हाल में बने रहना चाहिए। एक सक्रिय पाठक बनने के लिए शुरुआती दिनों में साहित्य की उपलब्धता और उसका अनुभव बहुत ज़रूरी है।

इसी स्तम्भ का छठवाँ आलेख *आपदा में सामाजिक विज्ञान का चेहरा* सामाजिक विज्ञान शिक्षण में तात्कालिक सन्दर्भ के उदाहरणों की जगह की वकालत करता है। लेखिका अंजना त्रिवेदी ने कोविड महामारी के कारण हुई पूर्ण तालाबन्दी के हालात में बच्चों के परिवेश के निजी अनुभवों को कक्षा शिक्षण में लाने और उनपर समालोचनात्मक दृष्टि रखते हुए समाज विज्ञान की अवधारणाओं की समझ बनाने की बात कही है।

इस स्तम्भ का सातवाँ और अन्तिम आलेख *आरम्भिक भाषा शिक्षण : बातचीत एवं चित्रों की उपयोगिता* है। लेखिका हुमा नाज़ सिद्दीकी ने पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ हुई अपनी बातचीत के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दर्शाया है कि मौखिक भाषा कौशल और कक्षा में सहभागिता से बनने वाला आत्मविश्वास बच्चों के आगे सीखने की सीढ़ी बनता है। बच्चों के साथ बातचीत शुरू करने के क्या बिन्दु हो सकते हैं, इसके उदाहरण भी वे रखती हैं।

विमर्श स्तम्भ के तहत *बच्चों की भाषा के सम्मान के मायने : एक अनुभव* में लेखक द्रोण साहू कक्षा में उनके साथ घटित एक घटना का वर्णन करते हैं। वे बताते हैं कि इस घटना ने उन्हें बच्चों और उनकी भाषा का सम्मान करने के असल मायने समझने में मदद की।

कक्षा अनुभव स्तम्भ में इस बार तीन आलेख हैं। पहला आलेख *पद्य पाठ : बातचीत से भाषाई कौशल की ओर* कक्षा में बच्चों के साथ गीत एवं कविता के इस्तेमाल और उसके अनुभव पर आधारित है। लेखिका अनीता चमोली ने आलेख में अपने कक्षा अनुभवों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि गीत, कविताओं के इस्तेमाल से बच्चों में भाषाई कौशल के साथ-ही-साथ मानवीय मूल्यों और भावनात्मक विकास की राह सुगम होती है।

इस स्तम्भ के दूसरे आलेख *कहानी क्यों? कहानियाँ और समझ के विभिन्न आयाम* की लेखिका हैं अनीता ध्यानी। लेखिका ने कहानियों के इस्तेमाल और समझ के विभिन्न आयामों पर अनुभवपरक टिप्पणियाँ की हैं। कहानी पर कैसे काम किया जाए और किन बातों पर ध्यान दिया जाए, इन चीज़ों पर भी आलेख में विस्तारपूर्वक बात की गई है।

तीसरे आलेख *किताबों से सीखते बच्चे* में लेखक दिनेश पटेल ने लॉकडाउन के दौरान स्कूलों के बन्द होने पर मोहल्ला कक्षाओं और सामुदायिक पुस्तकालय के माध्यम से बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं और उनके अनुभवों का ब्योरा प्रस्तुत किया है। आलेख

दर्शाता है कि किताबों के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताने से बच्चों में विविध कौशलों का विकास होता है।

पुस्तक चर्चा के अन्तर्गत इस अंक के लिए एस गिरधर की हालिया प्रकाशित किताब *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* की समीक्षा निशा नाग ने की है। निशा नाग ने किताब की चर्चा करते हुए लिखा है कि सरकारी शिक्षा व्यवस्था में छाई निराशा के बीच कर्मठता और समर्पण की मिसाल बने शिक्षकों की ये सफल कहानियाँ उत्साह बढ़ाती हैं और हमारा भरोसा पक्का करती हैं।

साक्षात्कार के अन्तर्गत धार ज़िले के नवाचारी शिक्षक सुभाष यादव से सिद्धार्थ कुमार जैन की बातचीत प्रकाशित की जा रही है। विषय की गहरी समझ रखने वाले और बच्चों के साथ मानवीय रिश्ते बनाकर काम करने वाले सुभाष यादव शिक्षक बिरादरी के लिए एक उदाहरण हैं।

संवाद स्तम्भ के अन्तर्गत इस अंक में 'बच्चों का साथ-साथ सीखना' विषय पर शिक्षकों की बातचीत को प्रस्तुत किया गया है। साथ-साथ सीखने में समूह निर्माण, समूह का स्थाई या अस्थाई होना, संवैधानिक मूल्यों का विकास, आदि कई मुद्दों के सन्दर्भ में भी यह बातचीत एक समझ देती है।

हम अपने पाठकों और लेखकों को याद दिलाना चाहते हैं कि *पाठशाला* का आगामी यानी ग्यारहवाँ अंक प्रारम्भिक गणित और उसकी शिक्षण प्रक्रिया थीम पर आधारित होगा। इस अंक में गणित के सैद्धान्तिक आयामों के साथ ही स्कूलों में बच्चों के साथ गणित सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं से अर्जित अनुभवों को भी लेख के रूप में शामिल किया जाएगा। उम्मीद है, हमें आपके अनुभवों के पिटारे से इस अंक के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा लेख प्राप्त होंगे।

हमें **पाठक चश्मा** स्तम्भ के लिए *पाठशाला* में छपने वाले लेखों के बारे में पाठकों की समालोचनात्मक टिप्पणियों की प्रतीक्षा रहेगी।

सम्पादक मण्डल

जेंडर और बच्चे
प्राथमिक कक्षा के बच्चों से बातचीत का एक अनुभव

विजय प्रकाश जैन

कक्षा में बच्चों के साथ संवैधानिक मूल्यों को लेकर काम कैसे किया जा सकता है यह लेख इस दिशा में किए गए एक प्रयास को प्रस्तुत करता है। लेखक बताते हैं कि बच्चों के साथ एक कहानी पर शुरू हुई बातचीत कैसे समाज में मौजूद जेंडर असमानता के पहलुओं को समझने की दिशा में बढ़ी। बच्चों ने जेंडर सम्बन्धित अपने अवलोकनों और अनुभवों को इस बातचीत में साझा किया। सं.

हमारे नीतिगत दस्तावेज़ बच्चों में संवैधानिक मूल्यों के विकास की अपेक्षा तो रखते हैं लेकिन एक शिक्षक इन मूल्यों को अपने शिक्षण में कैसे शामिल करे, इसपर कोई ख़ास स्पष्टता नहीं होती है। शिक्षक भी सामाजिक सन्दर्भ का एक हिस्सा होता है और वह अपने समाज विशेष के मूल्यों के साथ जीता है, ऐसे में यह नियत कर पाना, कि किन-किन मूल्यों को शिक्षण के अनिवार्य हिस्से में रखा जाए, काफ़ी चुनौतीपूर्ण होता है। तब इन नीतिगत दस्तावेज़ों की अपेक्षाएँ ही मूल्यों को चुनने का एक वाज़िब आधार हो सकती हैं।

मैं हमेशा से ही इन मूल्यों को शिक्षण में शामिल करने के तरीक़े खोजता रहा हूँ लेकिन कोई ख़ास सफलता नहीं मिली है। पिछले कुछ दिनों से मैंने बच्चों से बातचीत को अपने शिक्षण का अनिवार्य हिस्सा बनाया और इसी दौरान मुझे इन मूल्यों के शिक्षण को लेकर उम्मीद की एक किरण दिखी। छोटी कक्षाओं में, ख़ासकर पहली से पाँचवीं कक्षा में, बच्चों के साथ वर्ण, ध्वनि एवं मात्राओं की पहचान करवाना और उसके ज़रिए बच्चों में लिखने-पढ़ने के कौशलों को विकसित करने के लिए जिस विषयवस्तु का उपयोग हो रहा है, मैंने उसपर काम करने के तरीक़ों में इस बातचीत को केन्द्र में रखा है।

जेंडर असमानता हमारे समाज की एक कड़वी सच्चाई है। चूँकि परिवारों में बच्चे किसी-न-किसी रूप में इसे देखते रहते हैं इसलिए बहुत छोटी उम्र से ही उनके मन में भी इस तरह के विश्वास उपजने शुरू हो जाते हैं कि लड़के और लड़कियों में तमाम तरह की असमानताएँ हैं और लड़के, लड़कियों की तुलना में ज़्यादा श्रेष्ठ हैं। बच्चों की यह मान्यताएँ बातचीत के दौरान भी उभरकर आ जाती हैं। ऐसा ही एक वाक़या एक दिन कक्षा में कहानी निर्माण पर काम करते हुए मेरे साथ भी घटित हुआ। यह एक मिश्रित समूह था जिसमें कक्षा एक से पाँच तक के बच्चे थे।

मैंने बच्चों से कहा कि हम एक कहानी बनाएँगे। सारे बच्चे अपने क्रम से एक-एक लाइन बोलेंगे और मैं उसको बोर्ड पर लिखता जाऊँगा।

रोशनी ने अपनी बात प्रारम्भ की और बोली, "सर लिखो, एक साइकिल थी।"

रोशनी उस समय *साइकिल* नाम की पत्रिका पढ़ रही थी। उसने उसी पत्रिका के नाम से अपनी बात को आगे बढ़ाया।

मैंने श्यामपट्ट पर लिखा, एक साइकिल थी।

अब सुनील का नम्बर था, वह बोला, “साइकिल को एक लड़का चला रहा था।”

सुनील की बात को श्यामपट्ट पर लिखते हुए मैंने अनायास ही बच्चों से पूछ लिया, “लड़का क्यों, लड़की क्यों नहीं?” और यहीं से चर्चा ने रोचक मोड़ लेना प्रारम्भ किया। तभी सोनिया अपने क्रम के बिना ही बीच में बोली, “हाँ सर, लिखो लड़की चला रही थी।”

सुनील : “नहीं सर, लड़का चला रहा था।

मैंने बच्चों से पूछा, “अच्छा ये तो बताओ कि लड़की क्यों नहीं चला सकती?”

वासु : “सर, लड़की कमज़ोर होती है, वो गिर सकती है।”

मैं : “क्यों लड़का नहीं गिर सकता क्या?”

वासु : “सर, गिर तो सकता है, पर लड़का मज़बूत होता है।”

सुनीता : “क्यों लड़की मज़बूत नहीं होती क्या?”

बहस बढ़ने लगी थी। ये बाँसवाड़ा ज़िले के एक राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय के भील जनजाति परिवेश के कक्षा एक से पाँच के वो बच्चे थे जिनके घरों में पढ़ने-लिखने का कोई माहौल नहीं होता है। वे अपनी कल्पना और परिवेशीय अनुभवों से अपनी बात को पूरी मज़बूती के साथ रख रहे थे। लड़कियों का स्वाभिमान आहत होने लगा था, कक्षा के वातावरण में कुछ कटुता-सी दिखने लगी थी, लेकिन मैंने इस बहस को होने दिया।

मांगीलाल : “नहीं होतीं, वे डरती हैं।”

सोनिया : “क्यों, टीना मैडम स्कूटी नहीं चलातीं क्या?”

ये सोनिया का मास्टर स्ट्रोक था, इसपर लड़कों को कोई जवाब नहीं सूझा।

लड़कियाँ ख़ुश हो रही थीं, और लड़के चुप। थोड़ी देर के लिए कक्षा में चुप्पी छा गई थी।

कक्षा की इस चुप्पी का फ़ायदा उठाते हुए मैंने एक चार्ट पेपर उठाया, उसे कक्षा में टाँग दिया और बच्चों के साथ होने वाली चर्चा को लिखना शुरू किया। अब कहानी बनाना तो छूट गया और दूसरी चर्चा प्रारम्भ हो गई। मुझे लगा



चित्र : हीरा धुर्वे

यह चर्चा आवश्यक है। यदि इस चर्चा को इसी तरह जारी रखा जाए तो शायद महिला-पुरुष असमानता पर बच्चों के बीच एक प्रारम्भिक समझ बनना आरम्भ हो सकती है।

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मैंने बच्चों से पूछा, “अच्छा ऐसा कौन-सा काम है जिसे लड़कियाँ या औरतें नहीं कर सकतीं।”

इसपर श्रीपाल तुरन्त बोला, “सर, लड़कियाँ हल नहीं चला सकतीं।”

मेरे 'क्यों' पूछने पर दो-तीन आवाज़ें एक साथ आईं, "सर, लड़कियाँ हल चलाएँगी तो बारिश नहीं होगी।"

यह पूछने पर कि तुम्हें किसने कहा, बच्चे बोले, "सर हमें पता है, लड़कियाँ हल नहीं चलाती हैं।"

मेरे स्वयं के लिए यह जानकारी नई और चौंकाने वाली थी।

अपनी जानकारी को और अधिक बढ़ाने के लिए मैंने पूछा कि क्या लड़कियाँ खेतों में कोई काम नहीं करतीं?

इसपर कक्षा में अकसर कम बोलने वाली बच्ची लता ने कहा, "सर करती हैं न, पानी बाड़ती[1] हैं, ओड़ती[2] हैं, खातर[3] डालती हैं।"

यह बातचीत बच्चों की अपनी भाषा वागडी और हिन्दी दोनों में मिले-जुले रूप में हो रही थी।

मैं : "तो हल क्यों नहीं चलातीं?"

राजेश : "सर बताया न कि लड़कियाँ हल चलाएँगी तो बरसात नहीं होगी।"

मैं : "अच्छा ऐसा कभी हुआ है क्या?" के जवाब में सुनील बोला, "हाँ सर, एक बार नलदा (पास के गाँव) में एक लड़की ने हल चलाया तो बरसात नहीं हुई थी।"

मैं : "तो कहीं भी बरसात नहीं हुई थी।"

हरीश : "सर और सब जगह तो हुई पर नलदा में नहीं हुई।"

मैं : "तो लड़कियाँ खेतों में और काम करती हैं तब भी बरसात नहीं होती?"

आकाश : "तब तो होती है सर।"

मैं : "तो हल चलाने से क्यों नहीं होती?" के जवाब में सोनिया ने कहा, "सर, हल की तो हम पूजा करते हैं।" बच्चों को केवल यही पता था कि यदि लड़कियाँ हल चलाएँगी तो बरसात नहीं होगी।

बच्चे अपने परिवारों में और गाँवों में हो रही बातचीत के आधार पर अपनी धारणाएँ बनाते हैं और कभी कोई घटना घट जाती है तो ये धारणाएँ और अधिक पुष्ट हो जाती हैं।



चित्र : हीरा धुर्वे

बातचीत आगे बढ़ी और बच्चों से पूछा, "और बताओ, लड़कियाँ क्या नहीं कर सकतीं?"

नानूराम : "हवाई जहाज़ नहीं चला सकतीं सर।"

"क्यों नहीं चला सकतीं?" प्रश्न पर थोड़ा-सा शोर हुआ। बच्चे आपस में बात करने लगे और एक आवाज़ आई, "नहीं चला सकतीं सर।"

"पर क्यों?"

अजय : “सर, हवाई जहाज़ को ऊपर उड़ाना पड़ता है।”

मैंने पूछा, “इससे क्या होता है?”

बच्चे यह बात मानने को तैयार ही नहीं थे कि लड़कियाँ हवाई जहाज़ भी चला सकती हैं। इनमें लड़कियाँ भी शामिल थीं। अंकिता ने कहा, “हाँ सर, हवाई जहाज़ तो नहीं चला सकतीं।”

तभी मुझे ध्यान आया कि मेरे पास लेपटॉप है। लेपटॉप में यूट्यूब चलाकर दिखाया जिसमें एक महिला पायलट हवाई जहाज़ चला रही थी। बच्चे इसे देखकर आश्चर्यचकित थे, तभी मिथुन बोला, “सर, यह तो आदमी है”, क्योंकि पायलट ने पेंट-शर्ट पहन रखे थे। लेकिन सोनिया ने कहा, “नहीं, यह लड़की है।”



चित्र : हीरा धुर्वे

मैंने पूछा, “अब बताओ, लड़कियाँ और क्या नहीं कर सकतीं?”

बच्चे सोच में पड़े हुए थे। मनीष बोला, “बिजली के खम्भे पर नहीं चढ़ सकतीं।”

“क्यों नहीं चढ़ सकतीं?” पर मनीष ने ही कहा, “सर, वो घाघरा पहनती हैं, इसलिए नहीं चढ़ सकतीं।”

मैं : “और यदि पेंट पहन लें तो?”

विनोद हँसते हुए बोला, “सर, लड़कियाँ पेंट पहनती हैं क्या?”

आज सोनिया बहुत मुखर थी। तुरन्त बोली, “अभी देखा नहीं, वो लड़की पेंट-बुशर्ट पहनकर हवाई जहाज़ चला रही थी।” चर्चा बड़े असमंजस के दौर में थी।

तभी हरीश ने कहा, “सर, जेसीबी नहीं चला सकतीं।”

“क्यों नहीं चला सकतीं?” पर हरीश बोला, “सर, वो बहुत भारी होती है।”

एक बार फिर से लेपटॉप चलाया गया और एक लड़की को जेसीबी चलाते हुए दिखाया गया।

बच्चों ने इसे देखा, आपस में खुसुर-फुसुर हुई, इसी में कहीं से एक आवाज़ आई, “शहर की लड़कियाँ हैं ये सब।”

यानी बच्चे इस बात को मानने को तैयार ही नहीं थे कि लड़कियाँ और लड़के समान रूप से कार्य कर सकते हैं। समय हो रहा था, बच्चों की छुट्टी कर दी गई, लेकिन लड़के और लड़कियों दोनों के चेहरों पर असमंजस के भाव थे।

एक शिक्षक के तौर पर आज का अनुभव मेरे लिए काफ़ी उत्साहवर्धक रहा। कहानी निर्माण पर काम करते हुए बच्चों के साथ जेंडर असमानता पर उनकी मान्यताओं को जाँचने और उनपर विचार करने के अवसर को मैं समझ पाया और काफ़ी हद तक उनको चर्चा में शामिल कर पाया। आज की चर्चा का असर बच्चों की मान्यताओं पर कितना होगा ये तो नहीं पता, लेकिन कुछ चीज़ें तो स्पष्ट रूप से हुईं ही, जैसे–

- बच्चों की इस मान्यता पर चोट पहुँची कि लड़कियाँ लड़कों से कमज़ोर होती हैं।
- लड़कियाँ भी वो सभी शारीरिक और मानसिक श्रम के काम कर सकती हैं जो लड़के करते हैं।
- अगर खेती के बाक़ी काम लड़कियाँ कर सकती हैं तो केवल हल चलाने से ही बारिश न होने का क्या सम्बन्ध हो सकता है।
- क्या वास्तव में ऐसा होते हुए देखा गया है या ये सब सुनी सुनाई बातें ही हैं।

बच्चों की मान्यताओं पर उपरोक्त सवालों के उभरने के साथ ही में उन्हें सवाल करने, मान्यताओं का परीक्षण और उनपर विचार करने, तथ्यों को खोजने में शामिल कर पाया और सीखने की इन प्रक्रियाओं को बच्चों को अनुभव करने का अवसर भी मैं इस बातचीत के दौरान दे पाया।

शिक्षा के दीर्घकालिक लक्ष्य और नई शिक्षा नीति के आधार सिद्धान्त इस बात की ओर ज़ोर देते हैं कि, "शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है– जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिन्तन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जोकि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित– समावेशी, एवं बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीक़े से योगदान करें।"

क्या बच्चों के साथ हुई ये चर्चा नई शिक्षा नीति के इस आधार वाक्य की तरफ़ एक छोटा प्रयास नहीं है। बच्चों के परिवेश से जो जानकारी उन्हें मिलती है यदि उसपर बात नहीं की जाए तो ये जानकारियाँ धीरे-धीरे पुष्ट होते हुए जीवन का हिस्सा बन जाती हैं। यदि बच्चों के कोमल मन में समता, समानता जैसे भावों को जगह देनी है तो छोटी कक्षाओं से ही बच्चों के साथ सरल बातचीत और कक्षा-कक्ष में उनके अनुभवों को स्थान देते हुए काम करना होगा, तभी हम समतामूलक समाज की स्थापना की ओर क़दम बढ़ा सकते हैं।

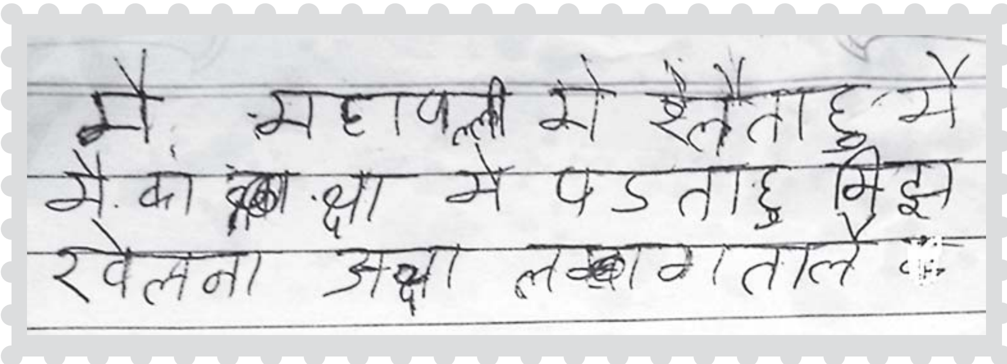
1. बाड़ती अर्थात डालती
2. ओड़ती अर्थात बीज डालती और खरपतवार हटाती
3. खातर अर्थात खाद

विजय प्रकाश जैन विगत एक दशक से हिन्दी भाषा शिक्षण के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में राजस्थान के बाँसवाड़ा ज़िले में मेंदिया डिंडोर के राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय में प्रबोधक हैं।

सम्पर्क : vijaypjain1970@gmail.com

मैं महापल्ली में रहता हूँ...

मीनू पालीवाल



उपर्युक्त लेखन में कक्षा 1 के बच्चे ने अपना परिचय लिखने का प्रयास किया है। बच्चे ने यह अक्तूबर माह में लिखा है। जुलाई से स्कूल खुलते हैं। लगभग 3 से 4 महीने में बच्चा इतना लिखना सीख पाया है।

बड़ों की नज़र से इस लेख में ग़लतियाँ देखने की कोशिश करेंगे तो बहुत-सी ग़लतियाँ नज़र आने लगेंगी क्योंकि कॉपी चेक करने या आकलन करने का मतलब अकसर ग़लतियाँ पहचानना और सुधरवाना ही समझा जाता है। परन्तु थोड़ी उदार और सृजनात्मक नज़र से इसका आकलन करें तो कुछ और ही दिखाई देता है।

आइए, हम उपर्युक्त लेखन का आकलन करने की कोशिश करते हैं।

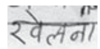
बच्चा क्या-क्या जानता है, इस लेख को देखकर हम इस बारे में निम्न बातें कह सकते हैं :

1. बच्चा 'म', 'ह', 'प', 'ल', 'क', 'क्ष', 'ड', 'झ', 'ख', 'न' अक्षरों को लिखना जानता है।

2. कुछ मात्राएँ, जैसे– 'आ' की मात्रा, 'ए', 'ऐ', 'इ', 'उ' की मात्रा, जानता है।

3. शब्दों के बीच में थोड़ी जगह छोड़ना जानता है।

4. शब्दों के ऊपर एक लाइन खींचना होती है, यह भी जानता है।

5. बच्चे का  में 'ख' लिखने का तरीक़ा यह बताता है कि शिक्षक का लिखा हुआ उसके लिए कितना महत्त्वपूर्ण होता है।

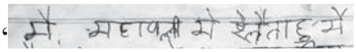
6. लेखन दाएँ से बाएँ और ऊपर से नीचे किया जाता है, इसे भी जानता है।

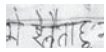
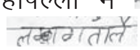
बच्चा सीखने की प्रक्रिया में कहाँ पहुँच चुका है, यह आकलन का एक उद्देश्य होता है। आइए, इसे अनुभव करते हैं।

1. बच्चे ने महापल्ली (जो आम मान्यता के अनुसार एक कठिन शब्द है क्योंकि यह 4 अक्षरों से मिलकर बना है और इसमें आधा अक्षर भी है) सही लिखा।

2. बच्चे ने कक्षा शब्द में 'क्ष' अक्षर इस्तेमाल किया है। यह अक्षर कम ही शब्दों में देखने को मिलता है, इसको एक कठिन अक्षर की तरह भी समझा जाता है।

3. 'कक्षा' और 'अच्छा' शब्द बोलकर देखने में ध्वनि में कुछ समानता महसूस होती है। कक्षा 1 का बच्चा यह महसूस कर रहा है और इसलिए शायद उसने अच्छा को अक्षा लिखा है, जो सराहनीय है। इससे यह पता चलता है कि बच्चा अपने सीखे हुए को कहीं और लागू करने की क्षमता विकसित कर रहा है।

4. "" इस वाक्य में बच्चा 'ए' और 'ऐ' की मात्रा का सही उपयोग कर पाया है।

5. "मैं महापल्ली में  " और "खेलना अक्षा  "। इनमें बच्चे ने 'ह' अक्षर की बजाय 'ल' का इस्तेमाल किया है। इससे ऐसा लग सकता है कि बच्चा 'ह' अक्षर नहीं जानता, परन्तु उसने अपने लेखन में 'ह' (हु) और 'ल' का (महापल्ली) सही इस्तेमाल किया है। इसका मतलब यह है कि जब बच्चे से अपना लिखा पढ़कर ठीक करने को कहा जाएगा, इस बात की बहुत सम्भावना है कि बच्चा अपनी ग़लती ख़ुद ही सुधार लेगा।

6. "", इस वाक्य में बच्चे ने 'मुझे' की बजाय 'मिझ' लिखा है। इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चा 'ए' और 'उ' की मात्रा का उपयोग नहीं जानता, उसने अपने लेखन में 'इ' और 'उ' की मात्रा का उपयोग किया है।

7. 'ड' और 'ढ़' की ध्वनि में अन्तर कम है, शायद कुछ लोग इस बात से सहमत हों।

सुधार कहाँ, क्यों और कैसे करवाएँ ?

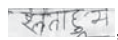
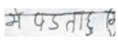
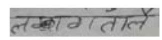
1. **पहला तरीक़ा** : बच्चे को स्वयं अपना लिखा पढ़ने और उसमें सुधार करने को कहा जाना चाहिए।

2. फिर आकलन करने वाले को यह निश्चय करना होता है कि असल में बच्चे ने ग़लती की भी है या नहीं, जैसे– बच्चे ने 'मुझे' की बजाय 'मिझ' लिखा है यह ग़लती है ही नहीं क्योंकि उसने अपने लेखन में 'इ' और 'उ' की मात्रा का कई जगह सही उपयोग भी किया है।

3. दूसरा, हमें यह बात समझनी चाहिए कि हम सारे ही शब्दों की त्रुटियों को सुधारने की कोशिश तुरन्त ही न करने लग जाएँ। इससे बच्चा लिखने से कतराने लगेगा।

4. हम एक समय पर ग़लतियों का पैटर्न देखकर कुछ को सुधारने का तरीक़ा ढूँढ़ें।

इस लेखन में केवल एक ही जगह सुधार करवाने की ज़रूरत दिख रही है।

, , 

तीन जगह एक ही क़िस्म की ग़लती है, यहाँ हम एक पैटर्न देख रहे हैं।

रहताहूँ , पढ़ताहूँ , लगताहै– इनमें एक पैटर्न बनता है। वह दो शब्दों को मिला रहा है और वह भी वाक्य के अन्त के दो शब्दों को। इसे सुधारने के वैकल्पिक तरीक़े हमें सोचने होंगे।

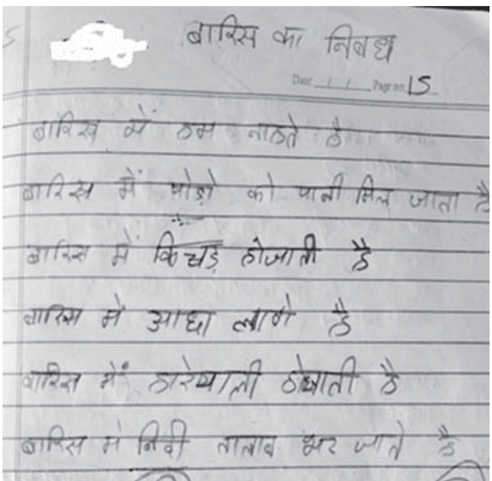
हमारा ग़लत तरीक़ा : बच्चे से सीधे-सीधे यह कहना कि दो शब्दों को एक साथ क्यों लिखा है, इन्हें अलग-अलग करके लिखो। यह तरीक़ा ग़लत है क्योंकि इसमें बच्चे के लिए सोचने की जगह ही नहीं है, सिर्फ़ हुक्म की तामील करना है। वैसे शिक्षक को भी कुछ सोचने की ज़रूरत नहीं है। फिर प्रश्न आता है कि क्या हम तीनों जगह अलग-अलग पेन से चिह्नित करते हुए बताएँगे कि यही सुधार कुल तीन जगह करना है? इस तरह तो हमें हर जगह उसे बताना होगा।

दूसरा तरीक़ा : एक वाक्य में कितने शब्द हैं, यह बताने की गतिविधि पूरी कक्षा के साथ करवाई जाए। उसमें ऐसे वाक्य लिए जाएँ जिनका अन्त एक ही अक्षर से होता हो। उदाहरण के लिए– 'मुझे चॉकलेट अच्छी

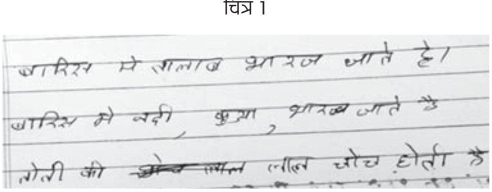
लगती है', 'मैंने तुम्हारी कॉपी ली है', 'मैं गाड़ी पर बैठता हूँ', आदि। इन वाक्यों में कितने शब्द हैं, जब बच्चे यह ख़ुद बताएँगे तो इस बात की बहुत सम्भावना है कि वे अपनी ग़लती ख़ुद ही सुधार लेंगे।

क्या सच में दोबारा लिखते समय बच्चे अपनी गलती सुधार लेंगे?

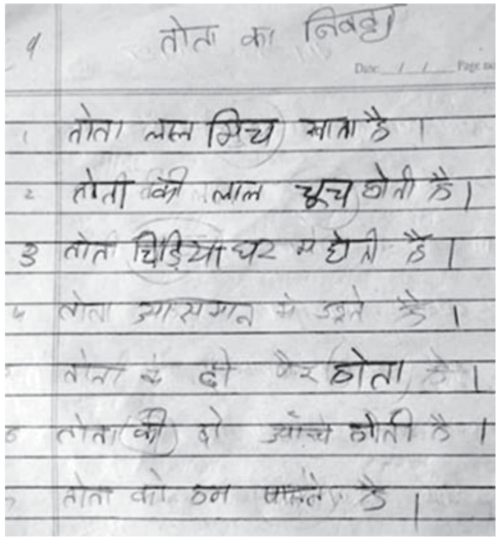
मैंने ऊपर बच्चों की कुछ ग़लतियों को नहीं सुधारने के लिए कुछ तर्क दिए हैं, जैसे– 'मिझ' शब्द, तर्क यह है कि बच्चा 'ए' और 'इ' की मात्रा जानता है। मैंने यह कक्षा में करके भी देखा है और फ़ोटो के माध्यम से आपके साथ साझा भी कर रही हूँ। बच्ची (कक्षा 3) ने 'बारिश' और 'तोता' विषय पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। दो शब्दों, क्रमशः 'नदी' को 'निदी' और 'चोंच' को 'चुच' लिखा है। बच्ची का लेखन देखकर मैं जान गई कि वह इन शब्दों को लिखना जानती है। तोते की चोंच लाल होती है और बारिश में नदी तालाब भर जाते हैं, मैंने बच्ची से यह कॉपी के अन्तिम पन्ने



चित्र 1



चित्र 2



चित्र 3

पर फिर से लिखने के लिए कहा। चित्र 3 में देखें कि बच्ची ने सही मात्रा का उपयोग कर लिया है। हाँ, चोंच में बिन्दी होती है उसपर काम करने की ज़रूरत है।

लेखन बेहतर करने के लिए कुछ सुझाव

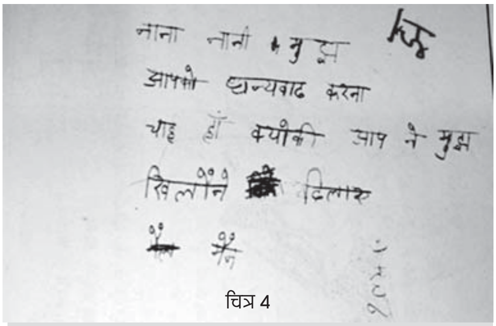
- बच्चों को ज़्यादा-से-ज़्यादा मौलिक लेखन के अवसर देना चाहिए; और
- उन्हें बाल साहित्य पढ़ने के अवसर (विज़ुअल मेमोरी का विकास) उपलब्ध कराने चाहिए।

ज़्यादा–से–ज़्यादा मौलिक लेखन के अवसर

यहाँ हमने कक्षा एक के बच्चे के लेखन का विश्लेषण किया है जो उसने अक्तूबर माह में लिखा है। कक्षा एक का बच्चा लिखकर अपनी बात हम तक पहुँचा पाया है, यह काफ़ी बड़ी उपलब्धि है। ग़लतियाँ सुधरवाने का सबसे अच्छा तरीक़ा एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित की गई किताब *लिखने की शुरुआत : एक संवाद* सुझाती है कि बच्चों को ज़्यादा-से-ज़्यादा लिखने के अवसर दिए जाएँ। शिक्षक बच्चे का लिखा चेक करते वक़्त अपने मन में जो ख़्याल आएँ, उन्हें

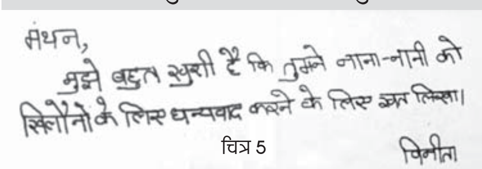
लिखें। जैसे– कोई बच्चा अपने पालतू पशु के बारे में कुछ लिखता है तो शिक्षक यह टिप्पणी दे सकते हैं कि बचपन में उनके पास भी कोई पालतू पशु था। वे किस तरह उसके साथ समय बिताते थे। शिक्षक कोई प्रश्न भी लिख सकते हैं, जैसे– तुमने लिखा कि तुम्हारा पालतू कुत्ता गुम हो गया था फिर वो किस तरह मिला, कहाँ मिला? यह तरीक़ा अपनाने से बच्चे लेखन को एक संवाद के तौर पर देख पाएँगे और उत्तर देने के लिए उन्हें लिखने की स्वाभाविक ज़रूरत महसूस होगी जिससे लेखन के अभ्यास का मौक़ा मिलेगा।

अपनी पसन्द के विषयों पर लिखना



चित्र 4

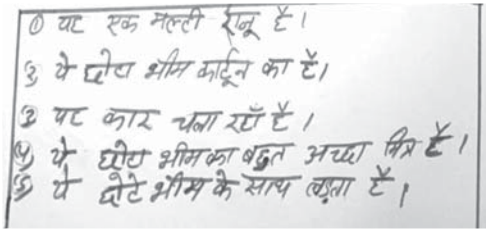
बच्चे के लेखन पर शिक्षक की लिखित प्रक्रिया - लिखने की शुरुआत : एक संवाद पुस्तक से



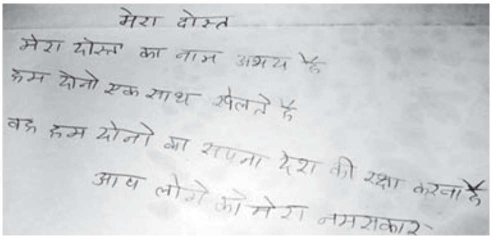
चित्र 5



चित्र 6



चित्र 7



चित्र 8

चित्र 7 में बच्चे ने अपनी पसन्द के कार्टून पर लिखने की कोशिश की है। चित्र 8 में दूसरे बच्चे ने 'मेरा दोस्त' विषय पर लिखने की कोशिश की है। क्या इस तरह के लेखन के अवसर बच्चे को और भी ज़्यादा लिखने को प्रेरित कर सकते हैं?

बाल साहित्य पढ़ने के अवसर (विज़ुअल मेमोरी का विकास)

बच्चों को ढेरों किताबें पढ़ने के लिए उपलब्ध करवाई जाएँ। कक्षा पहली और दूसरी के लिए एनसीईआरटी ने *बरखा* किताबों की श्रृंखला बनाई है। अकसर यह समझा जाता है कि जब पढ़ना ही नहीं आता तो कक्षा पहली और दूसरी के बच्चों को किताबें क्यों दी जाएँ। *बरखा* की किताबों के पहले पन्ने के अन्दर वाले हिस्से पर लिखा है कि ये किताबें पहली और दूसरी के बच्चों के लिए हैं। इन किताबों को चित्रों और शिक्षक की सहायता से जब बच्चे पढ़ेंगे तो अचेतन स्तर पर बच्चे शब्दों, अक्षरों और मात्राओं की बनावट व इस्तेमाल से परिचित हो रहे होंगे। ज़्यादा पढ़ने से बच्चों की विज़ुअल मेमोरी का विकास होगा। 'विज़ुअल मेमोरी' से मेरा आशय उस घटना से है जब आप किसी शब्द को देखकर ही बता देते हैं कि यह ग़लत लिखा है। कई बार आपको ख़ुद भी पता नहीं होता कि इसमें गड़बड़ कहाँ है, पर जब आप उस शब्द को दो-तीन तरह से लिखकर देखते हैं तो

बरखा क्रमिक पुस्तकमाला पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए है। इसका उद्देश्य बच्चों को 'समझ के साथ' स्वयं पढ़ने के मौक़े देना है। *बरखा* की कहानियाँ चार स्तरों और पाँच कथावस्तुओं में विस्तारित हैं। *बरखा* बच्चों को स्वयं की ख़ुशी के लिए पढ़ने और स्थाई पाठक बनने में मदद करेगी। बच्चों को रोज़मर्रा की छोटी–छोटी घटनाएँ कहानियों जैसी रोचक लगती हैं, इसलिए *बरखा* की सभी कहानियाँ दैनिक जीवन के अनुभवों पर आधारित हैं। इस पुस्तकमाला का उद्देश्य यह भी है कि छोटे बच्चों को पढ़ने के लिए प्रचुर मात्रा में किताबें मिलें। *बरखा* से पढ़ना सीखने और स्थाई पाठक बनने के साथ-साथ बच्चों को पाठ्यचर्या के हरेक क्षेत्र में संज्ञानात्मक लाभ मिलेगा। शिक्षक *बरखा* को हमेशा कक्षा में ऐसे स्थान पर रखें जहाँ से बच्चे आसानी से किताबें उठा सकें।

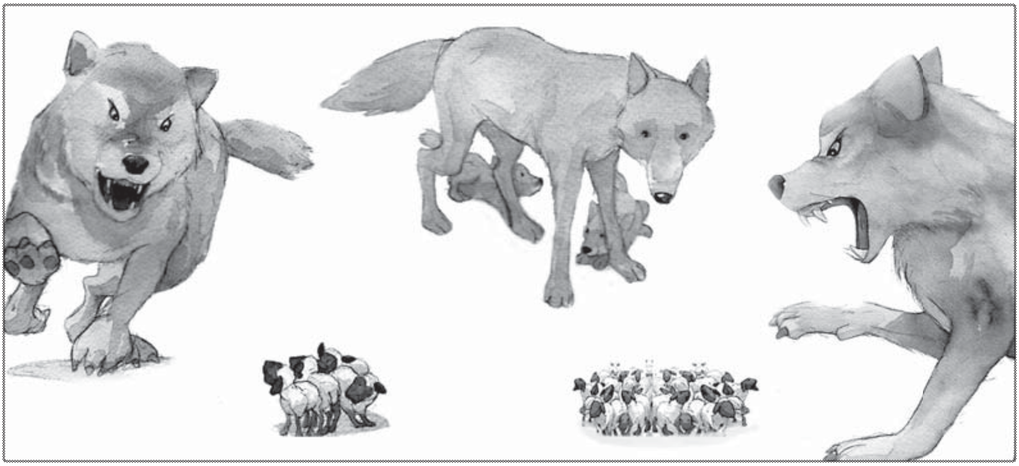
आप बता सकते हैं कि उनमें से सही कौन-सा है। कुछ लोग इसे अँग्रेज़ी के सन्दर्भ में ज़्यादा बेहतर तरह से समझ पाएँगे। बच्चे जितना ज़्यादा पढ़ेंगे, बातें करेंगे, लिखेंगे, उतना ही उनका लेखन बेहतर होता जाएगा। ज़रा सोचिए, 'महापल्ली' और 'कक्षा' जैसे शब्द पहली कक्षा के बच्चे ने सही-सही कैसे लिख लिए!

मीनू पालीवाल अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 2017 से काम कर रही हैं। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करना उन्हें अच्छा लगता है।

सम्पर्क : meenu.paliwal@azimpremjifoundation.org

भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं, चलो पता लगाएँ

नीतू यादव



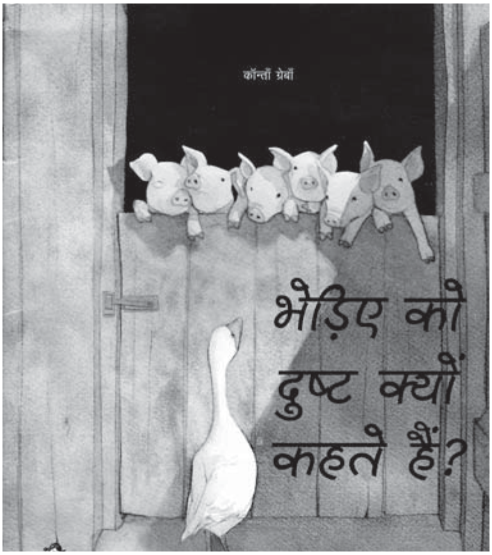
भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं, इस आकर्षक शीर्षक और आवरण वाली किताब का लेखन व चित्रांकन कॉन्ता ग्रेबाँ ने किया है। 'एकलव्य' ने इसे हिन्दी में अनूदित और प्रकाशित किया है। अच्छे साहित्य का गुण होता है कि वह सिर्फ़ वो न दिखाए जो उसका शाब्दिक अर्थ हो बल्कि उसमें सांकेतिक अर्थ भी हों। इस कहानी के इसी गुण की वजह से मुझे लगा कि बच्चों के साथ बातचीत करते हुए इस कहानी को सुनाना अच्छा रहेगा। हमारी लाइब्रेरी समुदाय में चलती है, उसमें मिली-जुली उम्र के बच्चे शामिल होते हैं। इसलिए यह समझने के भी अवसर थे कि 5-6 वर्ष तक के छोटे बच्चे इन चर्चाओं में शामिल होंगे या नहीं।

कहानी एक नन्हे मेमने की ख़बर से शुरू होती है। फिर छोटे-छोटे जानवरों, सूअर, हंस, चूहों के इर्द-गिर्द घूमती है। अपनी ही तरह के नन्हे जीव बच्चों के क़रीबी होते हैं, वे उनके बारे में जानना, सुनना पसन्द करते हैं।

भेड़िया मेमने से काफ़ी बड़ा है। अजनबियत के चलते भेड़िए की मासूम मुस्कुराहट भी नन्हे मेमने के डर की वजह बन जाती है। इसी से मन में यह ख़्याल आया कि बच्चों से पूछूँगी कि क्या आपके साथ भी कभी ऐसा हुआ कि आपको देखकर कोई मुस्कुराया और आप डर गए?

5 से 6 मिनट की चर्चा में बच्चों से उनके आसपास दिखाई देने वाले जानवरों के नाम, उनकी आदतों व स्वभाव के बारे में पूछा। बच्चों को किस जानवर से डर लगता है। अचानक वही जानवर दिख जाए और आसपास कोई न हो, वो क्या करेंगे? जैसे– कुत्ता, गाय, बकरी, साँप आदि। किताब दिखाते हुए पूछा कि इस कहानी में क्या होगा? किसी ने कहा, 'एक भेड़िया होगा वो सबको खा जाएगा।' किसी ने कहा, 'बकरी का बच्चा किसी को ढूँढ़ रहा है', फटाफट उत्तर आ रहे थे। इस तरह के कुछ सवालों के जवाब सुनने के बाद मुझे लगा कि अब बच्चों में कहानी सुनने के लिए पर्याप्त उत्सुकता बन गई है।

बच्चों को चित्र दिखाते हुए हावभाव के साथ कहानी सुनाना शुरू किया। कहानी में एक के बाद एक क्रम से क़िस्से आपस में जुड़े हैं इसलिए बीच में अनावश्यक प्रश्न नहीं पूछे। हाँ, जहाँ आवश्यक लगा और सस्पेंस को बनाए रखने के लिए यथास्थान अब क्या होगा?, कौन क्या करेगा?, जैसे प्रश्न ज़रूर पूछे। इस बात का बराबर ध्यान रखा कि सवाल-जवाब का इतना भी विस्तार न हो कि कहानी का तारतम्य ही बिगड़ जाए या



अटपटा हो जाए। जहाँ महसूस हुआ कि बच्चों को समझने में मुश्किल आ रही है, वहाँ बात स्पष्ट की। जैसे– 'रोमांचक किस्सा' व 'बढ़ा-चढ़ा कर बताना', 'राइडिंगहुड', 'विशालकाय', 'ख़ूँख़ार', 'भाले जैसे दाँत', आदि शब्द बच्चों को समझ नहीं आ रहे थे, इनके अर्थ स्पष्ट किए। पर इस बात का विशेष ध्यान रखा कि जब तक बच्चों ने किसी शब्द का प्रत्यक्ष तौर पर अर्थ नहीं पूछा, शब्द का अर्थ नहीं बताया क्योंकि इससे सन्दर्भ की सहायता से अर्थ समझने की बच्चों की क्षमता में कमी आने लगती है। बच्चों को 'विशालकाय' शब्द समझ नहीं आया तो उसे हावभाव से स्पष्ट करने की कोशिश की। और चूँकि 'राइडिंगहुड' को हम हावभाव से स्पष्ट नहीं कर सकते थे तो बच्चों को अनुमान लगाने के मौक़े दिए, बाद में उसके बारे में बताया।

अन्त में बच्चों से पूछा कि कहानी में क्या अच्छा लगा, क्या नहीं, और चर्चा के लिए कुछ सवाल पूछे :

- भेड़िया तो सिर्फ़ सलाम ही कर रहा था पर मेमना उसके नुकीले दाँतों से डर क्यों गया? उसको ऐसा क्यों लगा कि वह उसे खाना चाहता है?
- सभी जानवर जब उस क़िस्से को किसी दूसरे को बताते तो वो उसमें कोई नई या झूठी बात क्यों जोड़ देते थे?
- अगर जो बात मेमने ने कही वो ही आख़िर तक होती तो क्या होता?
- बच्चों को जो जानवर अच्छा लगा उसकी जगह वे ख़ुद होते तो क्या करते?

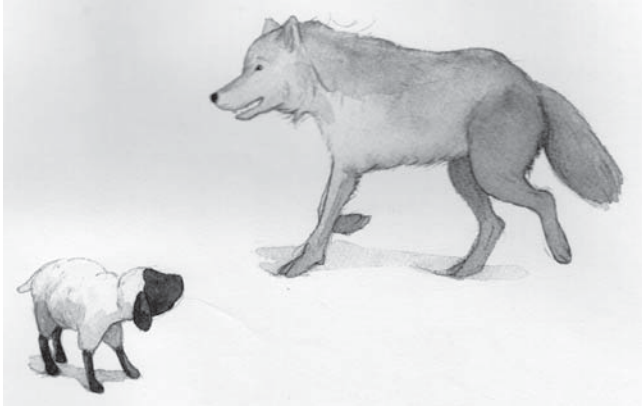
इन सवालों पर चर्चा के बाद एक गतिविधि की जिसमें कहानी में बच्चों को जो जानवर पसन्द आया उसके मुखौटे बनवाए। उनकी आवाज़ या कहानी में बोले गए संवादों के अंश बच्चों ने बोले। इस गतिविधि के दौरान यह महसूस हो रहा था कि बच्चे उन पात्रों के ज़रिए कहानी में जीवन्त रूप से शामिल हो रहे थे, जिससे कि कहानी की मज़ेदारी में और भी इज़ाफ़ा हुआ।

कहानी की योजना 10-12 साल के बच्चों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी लेकिन 17-18 साल के किशोरों ने भी इस चर्चा में उतनी ही दिलचस्पी से भाग लिया, साथ ही 5-6 साल के कुछ बच्चे भी चर्चा में जुड़े।

मैंने जब यह कहानी बच्चों को सुनाई तो बच्चों ने कई ऐसी घटनाएँ बताईं जब छोटी बात को बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया। कुछ घटनाओं में बच्चों ने ऐसे लोगों के बारे में भी बताया जो एकदम सीधे-सादे दिखते हैं फिर भी उनसे डर लगता है। और कुछ बातें बहुत गम्भीर थीं, जैसे–

सात साल के विवेक ने बताया, 'एक अंकल जो हमारे घर हमेशा आते हैं। जब भी वो हँसते

हैं तो मुझे बहुत डर लगता है।' मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी कि एक छोटे बच्चे के लिए हँसने जैसी बात भी डर का सबब बन सकती है।



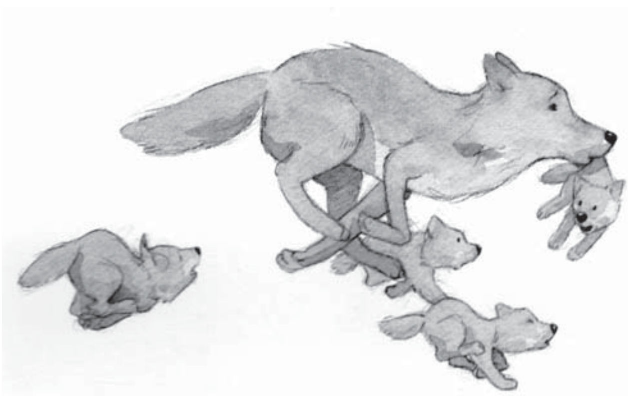
छह साल की पूजा ने बताया कि उसे उन लोगों से डर लगता है जो पाड़ा खाते हैं। पूजा की यह बात सुनकर मन में सवाल उभरने लगा कि एक छोटी बच्ची के दिमाग़ में ये बात कैसे आई होगी?

पाँच साल की परी ने बताया कि उसे अपने चाचा से डर लगता है। वो गाल में चिमटी लेते हैं, खिलाते-खिलाते काट खाते हैं। मैं उनके पास नहीं जाती। इससे समझ में आया कि बहुत-से बच्चों को बड़ों का उनके साथ इस तरह खेलना अच्छा नहीं लगता है।

बारह साल की बबीता ने बताया, 'एक बार जब यह बात चल रही थी कि बच्चा चोर घूम रहे हैं तो मुझे स्कूल आते-जाते हर कार से डर लगता था। मैंने भी घर में सबको यह कह दिया था कि आज जब मैं स्कूल से घर आ रही थी तब एक कार वाला मुझे बुला रहा था। वो मुझे किडनैप करना चाहता था। फिर यही बात मेरे दोस्तों ने भी उनके घर बताई, फिर डर से घर वालों ने कई दिन स्कूल नहीं भेजा क्योंकि स्कूल घर से दूर है। बाद में ख़ुद सोच नहीं पाई कि कैसे सबको बताऊँ कि मैंने झूठ बोला था।'

बच्चों ने कहानी बहुत पसन्द की। 'बढ़ा-चढ़ाकर बताना' शब्द तो कुछ बड़े बच्चों की ज़बान पर ऐसा चढ़ा कि वे अगले कई दिनों तक जुमले की तरह इसका प्रयोग करते रहे।

बच्चों के अनुभवों को सुनने से समझ आता है कि बच्चे अफ़वाहों से प्रभावित ही नहीं होते बल्कि उनमें शामिल भी होते हैं। किसी जाति विशेष के लोगों से डरना और किडनैप करने वाली बातें इसकी पुष्टि करते हैं कि बच्चे सुनकर ही बातों को सही मानने लगते हैं और डर उनके मन में घर बनाने लगता है। इस तरह के डर उनके मानसिक और सामाजिक विकास में बाधा बनते हैं। बच्चे बचपन से ही पूर्वाग्रहों के साथ बड़े होते हैं। बड़े हो जाने पर ये बातें उनके मन में इतने गहरे बैठ जाती हैं कि वे बिना तर्क किए ही धार्मिक कट्टरता व अन्धविश्वास जैसी ग़लत बातों को सही मानने लगते हैं।



कहानी पढ़ने में मज़ेदार तो है ही, कहानी का सामाजिक परिप्रेक्ष्य भी समझ आता है कि एक छोटी-सी बात कैसे बड़ी अफ़वाह बन जाती है। कैसे एक आम भेड़िया,

इतना दुष्ट, ख़ूँख़ार, दरिन्दा, राक्षस बन गया कि ख़ुद अपने-आप को न पहचान सका और अपने-आप से ही डरने लगा। इसी तरह समाज में भी किसी जाति, धर्म, समुदाय के प्रति ग़लत धारणाएँ बन जाती हैं। कई बार इस तरह की अफ़वाहें घटिया राजनीति करने वाले लोगों के द्वारा भी फैलाई जाती हैं, जिससे सामाजिक विरोधाभास बढ़ने लगते हैं। कभी-कभी वे किसी व्यक्ति की प्रताड़ना के रूप में सामने आते हैं और कभी जातिगत या धार्मिक समूहों के बीच दंगे-फ़साद के रूप में।

इस अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बचपन से ही अगर बच्चों को इस तरह का साहित्य उपलब्ध हो और उसपर उचित चर्चाएँ होती रहें तो बच्चों में सामाजिक विभिन्नता के प्रति अच्छी समझ और संवेदनशीलता विकसित की जा सकती है। भेड़िए के ख़ूँख़ार और दरिन्दे वाले परिदृश्य के साथ ही उसे एक सामान्य जीव मान पाना जो एक ख़ास प्रकृति के साथ पैदा व विकसित होता है, इस बात के लिए स्वीकृति बनाना भी आवश्यक है।

सभी चित्र एकलव्य प्रकाशन की क़िताब 'भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं' से साभार

नीतू यादव 2006 से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। विशेष रूप से पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं में भाषा और गणित शिक्षण को अर्थपूर्ण, बालकेन्द्रित और मनोरंजक बनाने के लिए प्रयास किए हैं। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से बतौर बाल पुस्तकालय प्रशिक्षक कार्य कर रही हैं। शोध कार्य, शैक्षिक और रचनात्मक लेखन में रुचि है।

सम्पर्क : neetu.yadav23@yahoo.in

कहानियाँ आख़िर करती क्या हैं ?

अनिल सिंह

कहानियाँ सदियों से सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार का हिस्सा रही हैं। अब ये सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा हैं। औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षण में कहानियों के इस्तेमाल को लेकर बहुतेरे प्रयोग होते रहते हैं। प्रस्तुत आलेख में कहानियों के मनो-सामाजिक प्रतिफल के साथ ही शैक्षिक उपक्रम के सन्दर्भ में उनका अनुभवजन्य विश्लेषण किया गया है। बच्चों के साथ कक्षा में किए गए काम के तीन उदाहरणों के माध्यम से ये पूरा ब्योरा रखा गया है। सं.

कहानियाँ आख़िर हैं क्या? वो करती क्या हैं? क्यों वो हमारी संस्कृति-परम्परा का ख़ास हिस्सा रहीं और अब औपचारिक शिक्षण का भी अभिन्न हिस्सा हैं। इस आलेख में हम इन्हीं कुछ बातों की चर्चा करने वाले हैं। साक्षरता के सीमित उद्देश्य से बाहर निकलकर जब तक हम कहानियों और उनके द्वारा रचे जाने वाले संसार को समझेंगे नहीं तब तक हम इनकी महत्ता और उपयोगिता को भी ठीक ढंग से नहीं समझ पाएँगे।

कहानी मानव मात्र की मनो-सामाजिक और बौद्धिक ज़रूरत है। यह दो सतहों पर काम करती है। पहली पर इसकी यथार्थ, भौतिक और वास्तविक जीवन सतह होती है। इसमें जो जैसा दिखता है उसकी स्मृति, समझ और प्रतिक्रिया उसी अनुरूप बनती है। यह प्रत्यक्ष घटित होता है और अकसर तत्काल होता है।

दूसरी सतह पर ज्ञान निर्माण का उद्यम होता है। इस दौरान विभिन्न स्मृतियों, अनुभवों, तर्कों को मिलाकर, कल्पना को आधार देकर नए ज्ञान, अनुभव और तर्क का निर्माण होने की सम्भावना होती है। दरअसल ज्ञान निर्माण की यह जो स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया या उद्यम है उसके अवसर बनाने, उसे प्रेरित करने, उद्दीप्त करने, और इस्तेमाल होने तक की कगार पर पहुँचाने की ज़रूरत होती है। इस तरह के उद्दीपन और प्रेरण में कहानियों की बड़ी अहम भूमिका होती है।

मुझे लगता है कहानी की ज़रूरत और उसके काम को हम नीचे लिखे तीन प्रमुख आयामों में समझ सकते हैं :

शिक्षणशास्त्रीय (Pedagogical) ज़रूरत

पढ़ने-लिखने का आधार बनाए जाने के रूप में कहानियों का इस्तेमाल बहुतायत में किया जाता है। पुस्तकों और कहानियों में एक अनदेखे संसार का ख़ज़ाना है, यह समझ में आते ही बच्चे इसकी ओर आकृष्ट होते हैं। इसके रंग, चित्र और मज़ेदारी के साथ-साथ घटनाओं की नाटकीयता इसे और आकर्षक बनाते हैं। इस ख़ज़ाने की चाबी की तलाश और इसकी चाह में वे पढ़ने जैसे कौशल को हासिल कर पाते हैं। भाषा की बनावट, शब्दों की ध्वनियाँ और शब्दों की पहचान के रास्ते भी यहीं से खुलने लगते हैं।

समाजशास्त्रीय (Sociological) ज़रूरत

कहानियाँ इंसानी ज़रूरत हैं। हमारी संस्कृति और परम्परा का हिस्सा हैं और सामाजिक चेतना की ख़ुराक भी हैं। लोगों से जुड़ाव बनाने, अलग-अलग समाज-समुदाय और उनकी जीवन परिस्थितियों के बारे में सरोकार और सामाजिक चेतना के विस्तार के लिए इनकी अहम ज़रूरत है। कहानियाँ समाज का ही प्रतिबिम्ब हैं। इस तरह कहानियों को समझना समाज को समझना भी है। स्वतंत्र रूप से ख़ुद की स्थिति और दूसरों के बरक्स अपनी स्थिति के सिरे खोलती हैं कहानियाँ।

विकासात्मक (Developmental) ज़रूरत

दरअसल यही वह क्षेत्र है जिसमें कहानी अपना असल काम करती है। विकास के इस क्षेत्र में कहानियों की ज़रूरत को हम चार आयामों में समझेंगे :

एजेंसी का विकास : कहानी हमारी चेतना, हमारी बुद्धि-विवेक, सक्रियता और पहल के उपयोग होने व उसे आगे बढ़ाने का अद्वितीय काम करती है। हम सबमें जो हमारी क्षमता-सम्भावना निहित है उसे सक्रिय करने, उनके इस्तेमाल होने के अवसर बनाती हैं कहानियाँ। कहानियाँ एक ऐसा उद्वेलन शुरू करती हैं जिसमें चेतना अपने मौलिक स्वरूप में उसकी उच्चतम सम्भावनाओं तक जाने की कोशिश करती है। समाधान ढूँढ़ने, निर्णय लेने, राय बनाने, भागीदार होने, महसूस करने, पात्र और स्थितियों के साथ तादात्म्य बनाने जैसे महत्त्वपूर्ण विकासात्मक उद्देश्यों को पूरा करती हैं कहानियाँ।

साहित्य में रुचि : कहानियाँ एक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम करती हैं, और वह है साहित्य में रुचि पैदा करना। एक ऐसा व्यक्ति गढ़ना जो साहित्य का रस ले पाता है। साहित्य के माध्यम से संसार को जानने समझने का और उसे जीवन का हिस्सा बना लेने का माद्दा रखता है। कहानियाँ एक ऐसा व्यक्ति बनाने का अभूतपूर्व काम करती हैं जो साहित्य में ख़ुद को और जीवन सन्दर्भों को तलाशने और देखने की दृष्टि रख पाता है। कहानियों को जीवन मानकर उनपर भरोसा करना सीखता है, और इस तरह साहित्य का सौन्दर्य देख पाता है।

सोच समझ का विस्तार : कहानियों का संसार हमारी सोच समझ का विस्तार करता है। उसके अलग-अलग पात्र, जीवन परिस्थितियाँ और उसमें संघर्ष, सामंजस्य व समाधान की विविधता व्यक्ति के विकास क्रम में उसकी दृष्टि को विस्तार देती है। कहानियाँ निर्णय, हाज़िर-जवाबी, तालमेल, विवेक, तर्क बुद्धि, भावनाओं, पारस्परिकता, जीवन सौन्दर्य जैसी समझ को विभिन्न धरातलों पर विकसित होने के अनन्त अवसर बनाती चलती हैं।

कल्पना शक्ति : विकास के इस आयाम में कहानियाँ, अपने रचना संसार की बदौलत कल्पना शक्ति को उसके चरम तक पहुँचाने का काम करती हैं। कहानी को सच मानकर उससे जुड़ पाने का रसायन पैदा करती हैं। एक ऐसा पात्र जिससे जीवन में कभी भी मिलना न होगा, ऐसी जीवन परिस्थिति जो न कभी घटित हुई है और न होने की सम्भावना है, आपसी सम्बन्ध और भावनाएँ ये सब कुछ कल्पना के बूते ही साकार हो पाते हैं। कहानियाँ इस कल्पना शक्ति को निरन्तर माँजती और निखारती हैं। खोज, आविष्कार, रचना और सृजन, सब इसी कल्पना शक्ति के ईंधन पर पलते और बढ़ते हैं।

अगर कहानी के द्वारा किए जाने वाले इन कामों और उनके असर पर ग़ौर करें तो हम पाते हैं कि कहानियाँ शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों को पूरा करती हैं। और शायद इसीलिए सदियों से ये हमारी संस्कृति-परम्परा का हिस्सा रही आई हैं। इनके बग़ैर हम शिक्षा की कल्पना नहीं कर सकते।

कहानियाँ और संवाद

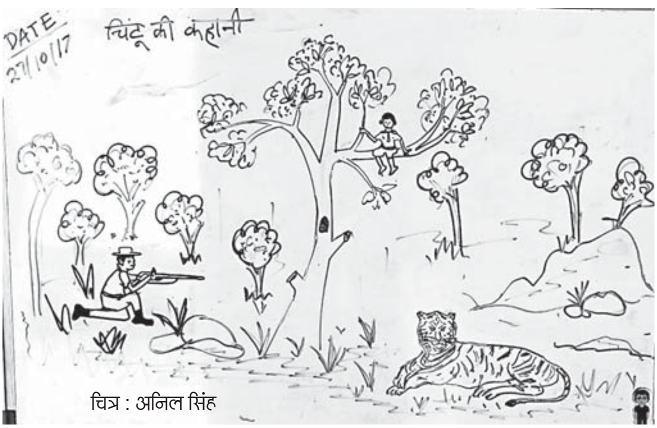
कहानियों के साथ संवाद का होना सोने में सुहागे की तरह है। कहानियाँ अकेले जो

काम करती हैं वह संवाद के साथ कई गुना चमत्कारी हो सकता है। कहानियाँ किताब में से पढ़कर सुनाई जा रही हों, मौखिक रूप से याद करके सुनाई जा रही हों या सुनाते हुए ही गढ़ी जा रही हों, कहानियों का उद्देश्य पूरा करने और उसका प्रभाव बढ़ाने के लिए उसके साथ संवाद की एक सुनियोजित, सतर्क और स्वाभाविक प्रक्रिया बहुत ज़रूरी है। यह संवाद कई बार कहानियों के साथ जन्मता है और कई बार पूर्व नियोजित हो सकता है। लेकिन दोनों ही तरह की स्थितियों में इसकी लय और गति कहानी के सुसंगत होनी चाहिए। आदान-प्रदान होना चाहिए, कही गई बात पर भरोसा होना चाहिए और सुनने व सुनाने वाले की बीच एक जीवन्त सम्पर्क बना रहना चाहिए।

कुछ उदाहरणों के माध्यम से हम कहानियों के इन कार्यों और प्रभाव को समझने की कोशिश करेंगे। ये सारे उदाहरण, मेरी अपनी भाषा की कक्षाओं के अनुभव हैं। इन कक्षाओं में अलग-अलग समय पर ढाई-तीन साल से लेकर दस साल तक के बच्चे-बच्चियाँ शामिल रहे हैं।

उदाहरण एक

'चिंटू और जंगल की कहानी' बच्चों की फ़रमाइश पर पैदा हुई एक कहानी है जो बस धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। यह कहानी पाँच साल के चिंटू की है जो जंगल घूमने का बहुत शौक़ीन है। हर रोज़ स्कूल से लौटकर आने के बाद, बस्ता फेंककर, अपना जंगल वाला थैला लेकर जंगल भाग जाता है और फिर जंगल में इधर-उधर घूमता फिरता है। इस कहानी के मार्फ़त बच्चे चिंटू के साथ पूरा जंगल घूमते हैं, उसके रोमांच में सहभागी होते हैं। स्कूल का बस्ता फेंककर, जंगल वाला थैला लेकर जंगल भाग जाना और वहाँ मनमाफ़िक घूमना-फिरना, अलग-अलग जानवरों से मुठभेड़, उनसे अलग-अलग युक्तियों से निपटना, किसी को दोस्त बनाना, किसी से मदद लेना, किसी की सवारी करना और किसी से जान बचाकर भागना, उन्हें उस काल्पनिक संसार में पूरी तरह से रमा देता है। ठीक उसी समय यह इस वास्तविक जटिल दुनिया में अपने अस्तित्व को देखने और बनाए रखने का ज़रिया भी बन रहा होता है। जैसे—



चित्र : अनिल सिंह

एक बार कहानी के दौरान स्थिति कुछ यूँ बनी कि चिंटू एक पेड़ पर चढ़ा बैठा है, क्योंकि नीचे शेर नज़रें गड़ाए बैठा है। पूरी रात गुज़र गई और अब सवेरा होने को था, पर शेर टस-से-मस न हुआ। चिंटू ने सोचा था शेर पानी पीने तो जाएगा ही, तब मौक़ा पाकर वो खिसक लेगा। पर शेर ने भी जैसे ज़िद ठान रखी थी कि आज तो वह चिंटू को चट करके ही दम लेगा। कहानी सुनाते हुए मैंने ब्लैकबोर्ड पर सारा दृश्य बयाँ कर दिया। पेड़, पेड़ की शाख पर बैठा चिंटू, नीचे शेर और घास-फूस। बोर्ड पर बने चित्र को देखते हुए छः साल के हर्ष ने कहा,

"शेर का चेहरा ऊपर की तरफ़ देखता हुआ बनाओ, क्योंकि शेर तो ऊपर की तरफ़ ही देख रहा होगा न।"

मैंने कोशिश करके बना दिया। अब सबकी जान साँसत में थी कि क्या होगा। मैंने भी मौक़े को भाँपा और कहानी को आगे बढ़ाने की बजाय यहीं अटका दिया।

मैंने कहा, "अब क्या होगा? कोई उपाय सोचना होगा जिससे चिंटू बच पाए।"



चित्र : अनिल सिंह

बच्चों के समूह ने, जिसमें साढ़े तीन साल के अबीर के साथ 6 साल की जन्नत शामिल थी, कमाल के सुझाव दिए। उनमें से तीन की चर्चा कर शायद हम कहानी के असर और उसमें बच्चों की शामिलियत को समझ सकें। सवाल के जवाब में बिना देर लगाए चार साल के अर्णव ने कहा,

"आप बन्दूक लिए एक शिकारी इस तरफ़ बना दीजिए, शेर उसे देखते ही जंगल के अन्दर भाग जाएगा और चिंटू उतरकर घर भाग आएगा।"

साढ़े तीन साल के अबीर और तीन साल के शिवा ने भी इसे जायज़ ठहराया। यह भी कुछ कम आइडिया न था। भई, जब सब कुछ ब्लैकबोर्ड में ही हो रहा है तो यह क्यों नहीं हो सकता। मैंने ऐसा ही किया। बन्दूक लिए एक शिकारी बना दिया। पर शेर गया नहीं। मैंने फिर कहा कि शेर तो गया ही नहीं अब क्या किया जाए। इस सवाल के जवाब में पाँच साल के अंश ने तपाक से कहा,

"आप शेर का चित्र मिटा दो, चिंटू चुपचाप उतरकर घर चला जाएगा।"

दो-एक बच्चों ने भी इस उपाय से अपनी सहमति जताई। बात भी सही थी। मैंने ही तो यह विकट स्थिति खड़ी की थी पेड़ के नीचे शेर बनाकर, और मैं ही इस स्थिति से छुटकारा दिला सकता था, शेर को ब्लैकबोर्ड से मिटाकर। बराबर का तर्क था।

मैंने कहा, "हाँ, ये तो बढ़िया आइडिया है। चलो कुछ और सोचते हैं,"

कहकर मैंने कुछ और उपाय कुरेदने चाहे। अब छः साल की जन्नत की बारी थी, उसने कहा,

"आप एक शेरनी बना दीजिए। शेर, शेरनी के साथ गुफा में जाएगा और कुछ वक़्त बिताएगा, इतने में मौक़ा पाकर चिंटू पेड़ से उतरकर भाग जाएगा।"

'वक़्त बिताएगा' का प्रयोग उसने दुनिया में आमतौर पर होने वाले प्रयोग की तरह ही किया लेकिन उसकी प्लेसिंग और भाव को उसने अपनी सहज समझ और निर्विवाद तर्क बुद्धि के साथ किया। कहानी का आनन्द, संकट और चिन्ता का मौलिक भाव और उपाय की रचनात्मकता व तार्किकता, सब कुछ अपने उच्चतम स्तर पर। ये बचकानी बातें तो कतई न थीं। यह कहानी का चमत्कार था। बच्चे बता रहे थे, क्योंकि कोई उन्हें सुन रहा है, कोई उनसे पूछ रहा है। कहानी के भीतर जाने और उसमें शामिल हो जाने की सम्भावनाएँ बनी हैं। उनके बताए उपाय पर सारी स्थिति टिकी हुई है। उनपर बड़ी ज़िम्मेदारी है कि इस वक़्त वे एक ऐसी बात बोल सकते हैं जो पूरा नज़ारा ही बदल दे। बच्चों के इन तर्कों को विवेचना की किसी भी कसौटी पर ख़रा ही पाया जाएगा। और कहानी अपना पूरा काम करती हुई दिखाई देती है।



चित्र : अनिल सिंह



चित्र : अनिल सिंह

उदाहरण दो

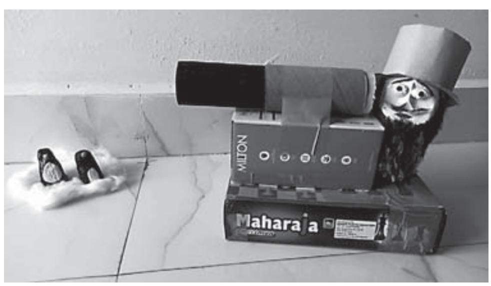
दूसरी घटना पेंगुइन की कहानी की है। इस कहानी में पेंगुइन के बच्चे खेलते-खेलते दूर समुन्दर में निकल जाते हैं। समुद्री शिकारी अकसर उन्हें पकड़ लेता है। ये और बात है कि कभी कछुआ तो कभी मछली आकर उन्हें बचा लेते हैं और घर पहुँचा देते हैं। पेंगुइन का नाम सुनते ही बच्चे पेंगुइन के बारे में और जानना चाहते थे। हमने कम्प्यूटर में खोजबीन की, तस्वीरें देखीं और कुछ वीडियो भी। फिर बातें शुरू हो गईं। पेंगुइन बर्फ़ीले इलाक़े में रहते हैं। और यह धरती का एक ख़ास हिस्सा है जहाँ बर्फ़ ही बर्फ़ है। यह फ्रिज में मिलने वाली और ठेले पर मिलने वाली बर्फ़ की ही तरह है लेकिन यह पूरा का पूरा इलाक़ा ही बर्फ़ है, यह किसी का घर है। पेंगुइन यहीं रह सकती है। उसे हम अपने घर लाकर पाल नहीं सकते। वह चिड़ियाघर में भी नहीं मिलती। वह चलती भी है और तैरती भी है।

मिट्टी के खिलौने बनाने की एक गतिविधि के दौरान हमने छोटे और बड़े पेंगुइन बनाए थे और उन्हें रँगा था। कहानी सुनाने के दौरान मैंने उन्हीं खिलौनों का इस्तेमाल किया। पेपर कप और पेपर प्लेट का एक कछुआ लिया, जूते के डिब्बे से एक शिप बनाई, एक पुराने कैलिडोस्कोप से दूरबीन बनाई, एक मुखौटा था जिसपर काले रंग के ऊन लगाकर बाल बनाए थे, यह हमारा शिकारी था, ख़ाली माचिस की डिब्बी और धागे की गिट्टी के ख़ाली रोल से बन्दूक बनाई गई थी। पुरानी फटी मच्छरदानी का एक बड़ा टुकड़ा जाल था। यह सब कहानी में इस्तेमाल होने वाली प्रॉपर्टी थी।

अकसर पेंगुइन के बच्चों की तलाश में शिकारी अपनी शिप में दूरबीन और बन्दूक रखके समुन्दर में आता था। पेंगुइन के बच्चे शिकारी की शिप देखते ही किनारों की ओर भागते थे। कहानी सुनते हुए और यह दृश्य देखते हुए बच्चे भी उसी तरह का डर और बेचैनी महसूस कर रहे थे। वे चाहते थे कि किसी भी तरह जल्दी से पेंगुइन के बच्चे किनारे पहुँच जाएँ और माँ-बाप के पास सुरक्षित हो जाएँ या फिर कोई कछुआ या मछली दोस्त आकर उन्हें किनारे ले जाए। मुखौटे से बनाया गया शिकारी बहुत ही ख़ौफ़नाक था। अगले दिन कहानी के अगले हिस्से में जब पेंगुइन के बच्चे खेलते-खेलते समुन्दर में दूर निकल गए, और मैं शिकारी को लाने की तैयारी में था तो चार साल के अबीर ने ज़ोर देकर कहा,

"शिकारी को मत लाना, बच्चे अभी खेलकर घर वापस आ जाएँगे, वह लगभग रुआँसा-सा था।"

उसकी बात में दृढ़ता थी और एक सहज संवेदना भी, कि कहानी ही सही, पर ये शिकारी के ख़ौफ़ वाला हिस्सा क्या डिलीट नहीं किया



चित्र : अनिल सिंह

जा सकता? क्यों किसी कहानी को सनसनीखेज़ बनाने के लिए पेंगुइन के बच्चों की जान जोखिम में डालने की ज़रूरत पड़ती है? एक धरातल कहानी का था और दूसरा विचार का। अबीर दोनों धरातलों पर बराबरी से खड़ा था। दूसरे बच्चे भी यही चाहते थे। सिर्फ़ एक बच्चा था जो चाहता था कि शिकारी को लाया जाए। वह शायद उस ख़ौफ़ में भी मज़ा ले रहा था। मुझे बच्चों की यह बात जँची और मैंने तय किया कि कहानी में अब शिकारी कभी नहीं आएगा। उसकी जगह मैं अख़बार से बनी नाव में ओरिगेमी पेपर का बना एक नाविक लेकर आया, जिसके आते ही बच्चों ने उसे 'बोट वाले अंकल' नाम दे दिया। मुझे समझ में आया कि यह सोचा-समझा यत्न था। 'बोट वाले अंकल' कहकर एक तरह से उन्होंने उस पात्र को पेंगुइन के बच्चों के पक्ष में, या यूँ कहें कि अपने पक्ष में कर लिया था। और एक तरह से कहानी का भविष्य तय कर दिया था।

कहानियाँ बच्चों को इस तरह अपनी गिरफ़्त में लेती हैं और उनकी चेतना को उद्दीप्त करती हैं। कहानी से जुड़कर बच्चे उसमें अपनी बात कहते हैं और पूरेपन से कहते हैं बशर्ते उन्हें भरोसा हो कि उनकी बातें 'बच्चों की बात' मानकर उड़ा नहीं दी जाएँगी। बच्चे अपनी बात तब भी कहते हैं जब वे देख पा रहे हों कि बड़े भी उसी कड़ी में अपनी बातें रख रहे हैं।

उदाहरण तीन

रिमझिम भाग 3 में 'कब आऊँ' एक रोचक पाठ है जिसमें रँगाई का काम करने वाले एक कामगार की तर्क बुद्धि और हाज़िर-जवाबी की बात है।

पाठ के ज़रिए बच्चों के बीच इस कहानी को शुरू करते समय थोड़ा संशय ज़रूर था कि बच्चों को यह कहानी रुचेगी या नहीं। कई बार किसी कहानी को लेकर बच्चों की नापसन्दगी एकदम से ज़ाहिर हो जाती है और कभी आप उसे कहानी के दौरान भाँप पाते हैं। जब मैंने कहा कि आज हम अवंती की कहानी सुनने वाले हैं तो किताब पर नज़र डालते बच्चों को भी लग रहा था कि इसमें कोई मज़ा नहीं आने वाला। कहानी भी छोटी है और चित्र भी एक ही है।

कहानी रँगाई करने वाले एक व्यक्ति 'अवंती' के साथ हुई एक घटना पर आधारित थी। कहानी की शुरुआत में ही रँगाई करने वाले के नाम पर थोड़ी मज़ेदार चर्चा हो ही गई। 'अवंती' उन्हें लड़की का नाम लगा। एक ने तो पूछ ही लिया, अवंती लड़की है या लड़का। मैंने कहा, तुम्हें क्या लगता है। उन्होंने कहा, नाम तो लड़की का है, पर कहानी में ये लड़का है। मैंने पूछा, ये नाम लड़की का क्यों है? एक ने कहा,



भोपाल में रानी अवंती बाई का चौराहा है। उसमें रानी घोड़े के ऊपर बैठी हुई हैं। किसी ने बताया बसंती भी लड़की का नाम होता है। आरती, गोमती, रोशनी, मालती के नाम के भी ज़िक्र हुए। फिर ये बात आई कि जैसे अवंती नाम लड़की का है पर कहानी में वह लड़के का नाम है ऐसे कुछ और नाम ढूँढ़ें। पर बच्चों का कहना था कि ये सब बातें बाद में, पहले कहानी आगे सुनाओ।

मैंने बताया कि अवंती गाँव में कपड़े रँगाई का काम करता था। रँगाई का काम करने वाले को रंगरेज़ भी कहते हैं। कुछ बच्चों को उससे 'अँगरेज़' की ध्वनि पकड़ में आई। तो बात थोड़ी अँगरेज़ों पर भी हो गई। अब बात इसपर आई कि पहले गाँवों में कपड़ों को रँगने का काम होता था। लोग कपड़े लेकर आते और मनचाहे रंग में रँगवाते थे। 'रंगा सियार' कहानी पहले हो चुकी थी इसलिए बच्चों के पास कपड़ों की रँगाई का एक सन्दर्भ तो था ही। बड़े-बड़े कड़ाहों में रंगों को घोलना और फिर उसमें कपड़ों को उबालना। ऐसे ही नीले रंग के एक कड़ाह में रात के अँधेरे में एक सियार गिर गया था और नीला हो गया था। बच्चों के लिए यह कनेक्शन बड़ा ही मज़ेदार रहा। किसी ने कहा, कपड़े तो सफ़ेद होते थे। दूसरे ने जोड़ा, हाँ, वो तो रुई से बनते हैं न, और रुई तो सफ़ेद रंग की होती है। मैंने बताया, रुई को कपास भी कहते हैं, कपास से पहले धागे बनाए जाते हैं उसे कताई कहते हैं, फिर धागों से कपड़ा बनता है। कपड़े बनाने के काम में 'जुलाहा' एक नाम आया जो बच्चों ने सुना ही नहीं था। उन्हें बताया कि बुनकर उसी का दूसरा नाम है जो हथकरघे पर कपड़ा बुनते हैं। कहानी की हर दूसरी लाइन में कोई न कोई सूत्र निकल ही आ रहा था जिससे एक नई दिशा में बात चली जाती और एक नई जानकारी हाथ लग रही थी। पर बच्चों को तो कहानी में ज़्यादा रुचि थी सो वे सब सूत्रों को छोड़ते जा रहे थे कि उन्हें फिर कभी समेटेंगे।

कहानी में एक सेठ अवंती को परेशान करने के मक़सद से उसकी दुकान पर आता है। सेठ को कपड़े का एक टुकड़ा रँगवाना होता है। जब अवंती पूछता है कि किस रंग में रंगवाना चाहते हैं तो सेठ कहता है, हरा, पीला, लाल, नारंगी, नीला, आसमानी, बैंगनी, काला और सफ़ेद रंग मुझे कतई अच्छे नहीं लगते। इन्हें छोड़कर किसी भी रंग में रंग दो।

बच्चों के लिए भी यह एक चुनौती की तरह था क्योंकि साफ़तौर पर वे अवंती की तरफ़ खड़े दिखाई दे रहे थे और सेठ के गिनाए रंगों से इतर रंग ढूँढ़ रहे थे। लगभग सभी ने एक-दो रंग सोचे, लेकिन वे जितने भी रंगों के नाम जानते थे वे सब तो सेठ ने गिना ही दिए थे। बच्चे कहानी में भी थे और कहानी के बाहर भी। उन्हें लग रहा था कि सेठ ने तो अवंती को मुश्किल में डाल दिया, अगर वे कोई रंग सोच पाते तो अवंती की मदद कर पाते। अब अवंती की कहानी सिर्फ़ एक कहानी नहीं थी एक ऐसी वास्तविक जीवन परिस्थिति बन गई थी जिसमें हर बच्चा अपने को शामिल पा रहा था और अपनी-अपनी तरह से समाधान सोचने में लगा हुआ था। एक अपरिचित और अंजान व्यक्ति, जो था भी और नहीं भी, जिससे कभी मिले भी नहीं और जिससे कभी मिलने की कोई सम्भावना भी नहीं, उसके लिए जिस जीवन्तता और सक्रियता से बच्चे सोच विचार में लगे थे, वह मेरे लिए अभूतपूर्व अनुभव था।

कहानी में तो अवंती सेठ का मंसूबा भाँप लेता है और कपड़ा ले लेता है। बच्चों के सामने प्रश्न था कि वह किस रंग में कपड़ा रंग कर देगा? जब पूछा कि क्या हुआ होगा तो एक बच्चे ने कहा कि कुछ दिन बाद अवंती ने सेठ को वो कपड़ा, बिना रँगे वैसे ही वापस कर दिया होगा। दूसरे ने कहा सब रंगों को मिलाकर कोई रंग बनाया होगा और उसमें सेठ का कपड़ा रँगा होगा। कुछ का कहना था कि सब रंगों को मिलाने से तो काला रंग बनेगा, क्योंकि काला रंग तो गहरा और तेज़ होता है। किसी ने कहा उसने कपड़ा वापस ही नहीं किया होगा।

कहानी में होता कुछ यूँ है कि सेठ जब पूछता है कि इसे लेने कब आऊँ, तो अवंती

कपड़े को अलमारी में बन्द कर उसमें ताला लगा देता है और कहता है कि सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार और रविवार को छोड़कर किसी भी दिन आ सकते हो। बच्चों को बड़ा मज़ा आया। पहली बार में तो वे हिसाब ही लगाने लगे कि कौन-सा दिन बचा। किसी ने कहा सोमवार, तो किसी ने कहा बुधवार। पर जब ध्यान से सुना और जाना तो उन्हें समझ में आया कि अवंती ने तो सप्ताह के सारे दिन ही गिना दिए थे। एक बच्ची ने अपनी उँगलियों में सातों दिन गिने और कहा, सेठ तो ज़ीरो दिन में आएगा। एक ने कहा, किसी दिन नहीं आएगा। मतलब कभी नहीं आएगा। एक बच्चे ने कहा, दीपावली के दिन तो आ ही सकता है। फिर किसी ने जोड़ा कि दीपावली के दिन भी कोई-न-कोई तो दिन होगा। वे आपस में ही सुलझते जा रहे थे। मैंने पूछा कि उसने कपड़े को अलमारी में रखकर ताला क्यों लगा दिया तो एक बच्चे ने बताया कि सेठ तो कभी लेने आने वाला नहीं इसलिए उसे कभी देना ही नहीं पड़ेगा।

अन्त में बच्चों को समझ में आ गया कि जिस तरह सेठ ने सारे रंग गिनाकर अवंती को परेशान किया उसी तरह अवंती ने सप्ताह के सारे दिन गिनाकर सेठ को परेशानी में डाल दिया। बच्चों ने कहा अवंती ने सेठ से बदला लिया। सेठ को भी समझ में आ गया कि अवंती ने उसकी बात का करारा जवाब दिया है।

बच्चे भावनात्मक रूप से पात्रों से जुड़ते हैं, उन स्थितियों की अपने सन्दर्भों में कल्पना करते हैं, किसी परिस्थिति में किसने क्या निर्णय लिया, और क्या निर्णय लिया जा सकता था इसकी पड़ताल करते हैं, अपने स्तर पर समाधान के रास्ते खोजते हैं और विविध जीवन सन्दर्भों से अपना तादात्म्य बिठाते हैं। कहानियाँ बच्चों के इन कौशलों को बढ़ाती हैं। उनके लिए दुनिया के नित नए दरवाज़े खोलती हैं और इंसानियत पर भरोसा मज़बूत करती हैं। कहानी हाड़-माँस का एक पुतला है जिसमें आप जान डाल सकते हैं। पाठ्यपुस्तकों की कहानियों में भी अपार सम्भावनाएँ होती हैं बाशर्त आप अकादमिक उद्देश्यों और उसकी खानापूरी में उलझकर न रह जाएँ। इसके अलावा, कहानियाँ अगर टाइम पास के लिए या काम चलाने के लिए इस्तेमाल की जाएँगी तो उनका ये कमाल देखने को कभी नहीं मिलेगा।

अनिल सिंह पिछले ढाई दशक से विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं के साथ मिलकर सामाजिक विकास के कार्य में संलग्न रहे हैं। 15 सालों से प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। जन संचार, समाज कार्य एवं शिक्षा शास्त्र की पढ़ाई की। वर्तमान में टाटा ट्रस्ट, पराग इनिशिएटिव के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com

पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति के मेरे अनुभव : सन्दर्भ : विज्ञान शिक्षण

शिव पाण्डेय

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षार्थियों की सक्रिय भागीदारी और प्रतिक्रिया का बड़ा महत्त्व देखा जाता है। पीयर इंस्ट्रक्शन एक ऐसी ही शिक्षण पद्धति है जिसमें शिक्षार्थी एक दूसरे की राय और तर्क से अपनी समझ बनाते हैं, एक दूसरे को सुझाव व फ़ीडबैक देते हैं और अपनी भी राय अभिव्यक्त करते हैं। इस तरीक़े में शिक्षक, बच्चों में अवधारणा निर्माण की चरणबद्ध प्रक्रिया को देख और समझ पाते हैं। शिव पाण्डेय ने इस आलेख में कक्षा 9 के बच्चों के साथ पीयर इंस्ट्रक्शन पद्धति से 'श्वसन' विषय पर कक्षा में किए गए काम का अनुभव प्रस्तुत किया है। सं.

लगभग दो दशक के अपने शिक्षण अनुभव में मुझे लगता है कि पढ़ाने के तौर-तरीक़ों में तरह-तरह के प्रयोग करके यह समझना, कि पढ़ाने के विभिन्न तरीक़ों का बच्चों के सीखने पर किस तरह का असर पड़ता है? इनकी सीमाएँ क्या हैं? और कौन-सा तरीक़ा किस परिस्थिति में अधिक कारगर हो सकता है?, एक शिक्षक को ख़ुद को तराशने में मदद करता है।

मैंने भी कई तरीक़ों, जैसे– प्रदर्शन पद्धति (demonstration method), प्रोजेक्ट पद्धति (project method), प्रश्नोत्तर पद्धति (question-answer method), जाँच-आधारित अधिगम (inquiry-based learning) और पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति (peer instruction method) को अपनी कक्षा में आज़माया है। इस लेख में मैं विज्ञान शिक्षण में जाँच-आधारित अधिगम और पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति के प्रयोग से जुड़े अपने अनुभवों और समझ को साझा कर रहा हूँ।

पीयर इंस्ट्रक्शन, कक्षा शिक्षण का एक ख़ास तरीक़ा है जिसमें शिक्षक छात्रों की मदद में लेते हुए शिक्षण कार्य करता है। उसकी शिक्षण योजना ऐसी होती है कि कक्षा में छात्रों के छोटे-छोटे समूह, किसी विशेष प्रश्न पर अपनी-अपनी समझ से चर्चा और तर्क-वितर्क करते हैं और एक दूसरे से सीखते हुए प्रश्न के सम्भावित जवाब खोजते हैं। हर एक समूह में चर्चा को सही दिशा देने का कार्य शिक्षक का होता है।

शिक्षण की इस पद्धति का विकास एरिक मजूर ने 1990 के दशक में किया था। मेरा मानना है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्र-शिक्षक के बीच बेहतर सहयोग और संवाद के लिए पीयर इंस्ट्रक्शन एक बहुत अच्छी रणनीति है। इसके कई और फ़ायदे भी हैं, जैसे–

- इसमें छात्रों को किसी विषय पर अपने सहपाठियों की राय और तर्कों पर बात करने और सवाल करने की आज़ादी होती है, अपनी ख़ुद की समझ और तर्कों को जाँच पाने के मौक़े होते हैं, जो एक दूसरे से कुछ-न-कुछ सीखने में मददगार होते हैं और इस तरह वह एक समृद्ध अवधारणात्मक समझ बना पाता है।

- इसमें छात्र साथ मिलकर किसी चुनी गई वैज्ञानिक अवधारणा के बारे में क्या, क्यों

और कैसे के बारे में सीखते हैं। विज्ञान सीखने की प्रक्रिया में यह बहुत ज़रूरी है।

– छात्र चुनी गई वैज्ञानिक अवधारणा पर अपनी समझ को अन्य छात्रों और शिक्षक के सामने तर्क और स्पष्टीकरण के साथ रखते हैं और सक्रिय भागीदारी करते हैं, इसलिए उसे वे काफ़ी लम्बे समय तक याद रख पाते हैं।

विज्ञान शिक्षण केवल पाठ्यपुस्तक में दी गई सामग्री या अवधारणा को पढ़ाना मात्र नहीं है, बल्कि छात्रों को विज्ञान सीखने की प्रक्रिया से परिचित कराना है।

मैंने अपने कक्षा शिक्षण के अनुभवों के आधार पर पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति की बारीक़ियों को समझने की कोशिश की है। जीवों में श्वसन की अवधारणा को समझाने की शुरुआत कुछ इस प्रकार से की। सबसे पहले निम्न दो सवालों पर छात्रों को अपने-अपने विचार रखने के लिए कहा—

1. श्वसन (respiration) क्या होता है? श्वसन से आप क्या समझते हैं?

2. श्वसन (respiration) और साँस लेना (breathing) में क्या कोई अन्तर है?

बच्चों के द्वारा दिए गए सभी जवाबों को बोर्ड पर लिख दिया गया और बच्चे इस दिशा में गहराई से सोचें समझें, इस उद्देश्य से उन्हें कुछ छोटी-छोटी खोज और पड़ताल करने के मौक़े दिए गए। सभी बच्चों ने कक्षा में निम्न खोजें कीं—

1. अपनी-अपनी साँस लेने और छोड़ने की प्रक्रिया का ध्यान से अवलोकन करना कि इस दौरान क्या-क्या होता है व पेट और छाती (चेस्ट) के मूवमेंट में क्या पैटर्न हैं।

2. यह देखना कि कोई व्यक्ति कितनी देर तक अपनी साँस रोक सकता है।

3. यह देखना कि हम एक मिनट में कितनी साँसें लेते और छोड़ते हैं? और दौड़कर आने के बाद इनमें क्या फ़र्क़ पड़ता है।

4. एक मिनट में साँसें लेने और छोड़ने की दर का क्या हमारी उम्र, जेंडर और लम्बाई से कोई सम्बन्ध है?

5. यह देखना कि छोड़ी गई साँस में कितनी हवा है?

6. यह जानना कि छोड़ी गई साँस में कौन-सी गैस हो सकती है?

7. यह पता करना कि क्या सभी जन्तु फेफड़ों से ही साँस लेते हैं या फिर उनमें कोई अन्य श्वसन अंग होते हैं?

जब इन सभी प्रश्नों का जवाब छात्रों ने सुझाए गए तरीक़ों से ढूँढ़ लिया तब इस बात पर बड़े समूह में चर्चा रखी गई कि श्वसन और साँस लेना, इनमें क्या कोई अन्तर है? या ये दोनों शब्द एक ही हैं? चर्चा के दौरान छात्रों द्वारा रखी गई बातों को आधार बनाते हुए एक साझी समझ बनाने की कोशिश हुई कि साँस लेना एक भौतिक प्रक्रिया है जिसमें गैसों का आदान-प्रदान होता है, और इस काम के लिए अलग-अलग प्रकार के जीवों में अलग-अलग व्यवस्था होती है। साँस लेने के काम में भिन्न-भिन्न अंग, जैसे— फेफड़े, त्वचा, गिल, ट्रेकिआ आदि मदद करते हैं। जबकि श्वसन एक रासायनिक प्रक्रिया है जो कोशिका के भीतर होती है और इसी प्रक्रिया के बाद हमें भोजन से ऊर्जा प्राप्त होती है।

छात्रों की समझ को विस्तार देने के लिए उन्हें पिछली कक्षा में सीखे गए सजीव और निर्जीव में अन्तर को याद दिलाया गया, और उनसे पूछा गया कि जब हम लोग पेड़-पौधों को भी सजीव मानते हैं तो क्या पेड़-पौधे भी श्वसन करते हैं?

सभी छात्रों को अपने-अपने मत और तर्कों को लिखकर बताने को कहा गया। कक्षा में छात्रों द्वारा दिए गए रिस्पॉन्स इस तरह के थे कि पूरी कक्षा चार तरह के मतों में विभाजित हो गई थी। इस तरह कक्षा में निम्न चार समूह बन गए—

समूह 1 : पेड़-पौधे भी हमारी तरह जीवित होते हैं अतः वे भी श्वसन करते हैं, पर वे श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन (O_2) की जगह कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) लेते हैं।

समूह के छात्रों का तर्क

– क्योंकि प्रकाश संश्लेषण ही पौधों का श्वसन है।

– पौधों में ऐसा कुछ होता है जिससे वे ऑक्सीजन का उपयोग स्वयं नहीं कर सकते, वे केवल कार्बन डाइऑक्साइड ही ले सकते हैं। वे ऑक्सीजन तो हमारे लिए छोड़ते हैं।

– अगर पेड़-पौधे भी ऑक्सीजन लेने लगेंगे तो धरती पर ऑक्सीजन कम हो जाएगी और जीव मरने लगेंगे।

समूह 2 : पेड़-पौधे भी हमारी तरह जीवित होते हैं अतः वे भी ठीक हमारी तरह ही श्वसन करते हैं अर्थात वे श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन (O_2) लेते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) छोड़ते हैं।

समूह के छात्रों का तर्क

– पेड़-पौधों में भी जीवन होता है, अतः वे भी श्वसन क्रिया करते हैं।

– पौधों में लगातार वृद्धि होती रहती है, उनमें फल, फूल, नए-नए पत्ते आदि आते रहते हैं इसलिए वे भी श्वसन करते होंगे।

– पौधे के सभी भागों में श्वसन होता है क्योंकि जब बीज बोया जाता है तो सबसे पहले जड़ें निकलती हैं, उनमें श्वसन होता है जिससे पौधा बढ़ता है। बाद में तना और पत्तियाँ आती हैं और उनसे भी श्वसन शुरू होता है।

समूह 3 : पेड़-पौधे श्वसन तो करते हैं पर श्वसन की क्रिया केवल रात में ही होती है।

समूह के छात्रों का तर्क

– क्योंकि दिन में सूर्य का प्रकाश होता है इसलिए दिन में सिर्फ़ प्रकाश संश्लेषण होता है पर जब रात में अँधेरा हो जाता है तो पौधे प्रकाश संश्लेषण करना बन्द और श्वसन करना शुरू कर देते हैं।

– हमने सुना है कि रात में पेड़ के नीचे नहीं सोना चाहिए क्योंकि रात में वे श्वसन करते हैं और ज़हरीली कार्बन डाइऑक्साइड गैस (CO_2) छोड़ते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

समूह 4 : पेड़-पौधे श्वसन तो करते हैं पर श्वसन की क्रिया सिर्फ़ पौधे की पत्तियों में होती है उसके अन्य भागों में नहीं।

समूह के छात्रों का तर्क

– जैसे हम लोग सिर्फ़ नाक से ही साँस लेते हैं वैसे ही पौधों में सिर्फ़ पत्तियों में ही श्वसन होता है क्योंकि पत्तियों में ही कुछ ऐसा गुण होता है जिससे पौधा ऑक्सीजन ले सकता है।

– पौधों में भी सिर्फ़ पत्तियों में श्वसन होता है और नलियों की मदद से ऑक्सीजन पौधे के अन्य भागों तक पहुँचती है।

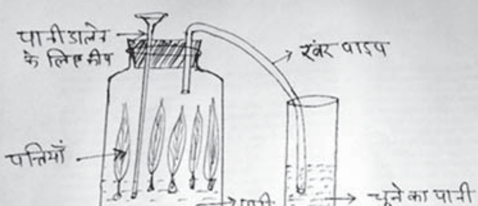
– सिर्फ़ पेड़ की पत्तियों में ही स्टोमेटा नामक छिद्र पाया जाता है जिससे ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड अन्दर-बाहर आ-जा सकती है। इसलिए सिर्फ़ पत्तियाँ ही श्वसन कर सकती हैं। पर इस काम में पौधे के अन्य भाग सहायक होते हैं, जैसे– जड़ें पानी और खनिज लवण अवशोषित करके पत्तियों को देती हैं तभी फ़ोटोसिन्थेसिस हो पाता है।

अब मेरे लिए सवाल ये था कि पूरी कक्षा साझी समझ पर कैसे पहुँचे। बच्चों को किस तरह के मौक़े दिए जाएँ?

इसलिए मैंने फिर से बच्चों से पूछा कि पेड़-पौधे भी श्वसन करते हैं या नहीं? इस बात का पता लगाने के लिए क्या कोई प्रयोग किया जा सकता है? बच्चों से काफ़ी चर्चा के बाद इस

बात पर सहमति बनी कि अगर किसी तरह पौधे से छोड़ी गई गैस को इकट्ठा कर लिया जाए तो हम उस गैस का परीक्षण करके यह जान सकते हैं कि वह कौन-सी गैस छोड़ता है। अगर उनके द्वारा छोड़ी गई गैस में कार्बन डाइऑक्साइड मौजूद होगी तो यह मान लिया जाएगा कि पेड़-पौधे भी हमारी तरह ही श्वसन करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड गैस ही छोड़ते हैं।

इसके लिए एक छोटा-सा प्रयोग किया गया। एक प्लास्टिक का चौड़ा डिब्बा, एक कीप, स्ट्रॉ, रबर की पतली नली / सेलाइन ड्रिप पाइप, पेपर कप में लगा हुआ एक छोटा-सा पौधा, एक परखनली और चूने के पानी की व्यवस्था की गई। सबसे पहले पेपर कप में लगे हुए पूरे पौधे को प्लास्टिक के बड़े डिब्बे में रखकर उसके द्वारा छोड़ी गई गैस को चूने के पानी में भेजा गया और फिर यही प्रयोग बारी-बारी से केवल उसकी पत्तियों और फूल की पंखुड़ियों के साथ भी किया गया। इस प्रयोग को कक्षा में ही किया गया ताकि सूर्य के प्रकाश को रोक कर पौधे में प्रकाश संश्लेषण को रोका जा सके। प्रयोग की डिज़ाइन नीचे दिए चित्र के अनुसार रखी गई थी।



चित्र : शिव पाण्डेय

इसके नतीजे छात्रों को चौंकाने वाले थे। छात्रों ने पाया कि जब पूरे पौधे के साथ प्रयोग किया था तब भी छोड़ी गई गैस ने चूने के पानी को दूधिया कर दिया और जब यही प्रयोग पौधे की केवल पत्तियों या फूल की पंखुड़ियों के साथ किया गया तब भी चूने का पानी दूधिया हो गया था। इस प्रयोग के बाद जब छात्रों के बीच चर्चा हुई तो उन्हें अपनी समझ को फिर से परिमार्जित करने का मौक़ा मिला और वे एक साझी समझ बनाने की दिशा में आगे बढ़े।

श्वसन की अवधारणा पर इतना सब कुछ करने के बाद छात्रों में किस तरह की अवधारणात्मक समझ बनी है? इसका पता लगाने के लिए फिर से उन्हें एक प्रश्न दिया गया। उनसे पूछा गया कि क्या बीज भी श्वसन करते हैं। सभी छात्रों ने अपनी-अपनी समझ को कॉपी में लिखा। मैंने देखा कि कक्षा में फिर से निम्न चार तरह के विचार थे और इनके पीछे छात्रों के अपने-अपने तर्क भी थे।

प्रश्न : क्या बीज भी श्वसन करते हैं?

समूह 1 : बीज श्वसन नहीं करते क्योंकि...

बच्चों के तर्क

- बीज भण्डार वाले / दुकानदार बीज को पैकेट में बन्द करके रखते हैं और इसे बहुत दूर-दूर तक ले जाते हैं, चूँकि बन्द पैकेट में बीज को हवा नहीं मिल सकती इसलिए बीज श्वसन नहीं करते। जब इन बीजों को पैकेट से निकालकर खेतों में बोया जाता है तब ये बीज पानी और मिट्टी की मदद से अंकुरित होकर नया पौधा बना लेते हैं और तब जाकर श्वसन शुरू करते हैं।

- हमें पता है कि सिर्फ़ पेड़ के पत्ते ही श्वसन करते हैं और पौधे के सभी अन्य भागों को ऊर्जा देते हैं। चूँकि बीज पेड़ से उत्पन्न होते हैं और वो पौधे से टूटकर अलग हो चुके हैं अतः वे श्वसन नहीं कर सकते।

- बीजों को एक निर्जीव यानी नॉन-लिविंग थिंग माना गया है, अतः वे श्वसन नहीं करते। बीज पर जब पानी पड़ता है तो ही वो सजीव होकर अंकुरित होते हैं और श्वसन शुरू करते हैं।

समूह 2 : बीज श्वसन करते हैं।

बच्चों के तर्क

– जब बीज को ज़मीन में बोया जाता है तो वे अंकुरित होकर बढ़ते हैं और नया पौधा बनाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि बीज भी जीवित हैं। किसी जीवित पौधे को बढ़ने के लिए खाद और पानी के साथ-साथ ऑक्सीजन की भी ज़रूरत होती है। बीज श्वसन करते हैं तभी वो अंकुरित हो पाते हैं, अगर श्वसन नहीं करते तो अंकुरित नहीं हो पाते।

– जो सजीव श्वसन नहीं करता वो कुछ ही समय में सड़ जाएगा पर बीज काफ़ी समय तक बिना सड़े रहते हैं और अंकुरित होकर नया पौधा बना सकते हैं, इससे सिद्ध होता है कि बीज श्वसन करते हैं।

समूह 3 : बीज श्वसन करते हैं पर केवल एक निश्चित समय पर ही करते हैं।

बच्चों के तर्क

– बीजों का भी एक टाइम होता है जब उन्हें बोया जाता है। अगर उस समय पर उस बीज को नहीं बोया जाता तो वह सड़ जाता है। अतः बीज केवल तभी श्वसन करते हैं जब उनका बोने का मौसम होता है।

– जो बीज हम बोते हैं वो अलग से बाज़ार से ख़रीदकर लाते हैं और जो हम खाते हैं वह बोने पर अंकुरित नहीं होता। इससे यह लगता है कि बोने के लिए लाया गया बीज श्वसन करके अंकुरित हो सकता है, पर खाने के लिए लाया गया बीज श्वसन नहीं कर सकता इसलिए वह अंकुरित नहीं होता है।

समूह 4 : बीज हमेशा ही श्वसन करता है पर बहुत ही कम मात्रा में।

बच्चों के तर्क

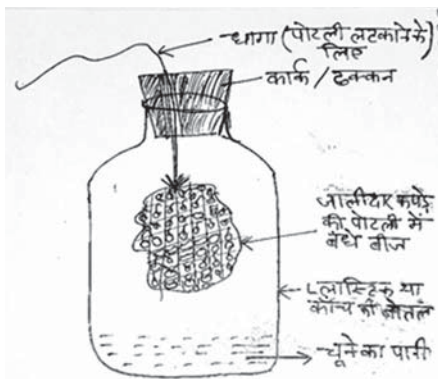
– जैसे हम लोग श्वसन नहीं करने पर मर जाते हैं ठीक उसी तरह बीज भी अगर श्वसन नहीं करेंगे तो मर जाएँगे और फिर कभी भी बोने पर अंकुरित नहीं होंगे।

– जब बीज मिट्टी और पानी के सम्पर्क में आता है तब इनके दबाव से वह पूर्ण रूप से श्वसन करने लगता है।

– बीज बहुत छोटे होते हैं और पौधे से अलग होने पर सूख भी जाते हैं, अतः उनमें श्वसन बहुत धीमे होता है।

– बीज में श्वसन करने का अलग तरीक़ा होता होगा, तभी तो वह लम्बे समय तक जीवित बचे रह सकते हैं।

मैंने पाया कि अभी भी बच्चों में पेड़-पौधों में श्वसन को लेकर अलग-अलग तरह की समझ है। अब मैंने समूह चार के सभी 8 छात्रों को अन्य समूहों के छात्रों को अपने तर्क से समझाने और उनके प्रश्नों का जवाब देने का मौक़ा दिया। इस समूह के छात्रों ने अपने अनुभवों, उदाहरणों और तर्कों को रखने की कोशिश की। जब एक स्तर की चर्चा पूरी हो गई तो मैंने समूह चार के छात्रों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि तुम लोग इस बात का परीक्षण करने के लिए क्या कोई प्रयोग करके दिखा सकते हो कि बीज में श्वसन होता है या नहीं। छात्रों से विचार विमर्श के बाद स्कूल के किचन से एक छोटी-सी बोतल, एक जालीदार कपड़ा और साबुत चने के बीज, धागा और चूने के पानी की व्यवस्था करके नीचे दिए गए चित्र की भाँति प्रयोग डिज़ाइन किया गया। इस प्रयोग के तीन सेटअप बनाए गए। पहला



चित्र : शिव पाण्डेय

सेटअप अंकुरित बीजों के साथ, दूसरा सेटअप सूखे बीजों और तीसरा कुछ काँच के कंचों के साथ बनाया गया।

इस प्रयोग में छात्रों ने पाया कि लगभग आधे घण्टे के बाद पहले सेटअप, जिसमें अंकुरित बीज जालीदार कपड़े में बाँधकर लटकाए गए थे, की बोतल के चूने के पानी का रंग दूधिया हो गया। पर जिस बोतल में सूखे बीज लटके थे उस बोतल में रखे चूने के पानी को दूधिया होने में लगभग दो घण्टे का समय लग गया था। तीसरे सेटअप, जिसमें बीजों की जगह कंचे लटकाए गए थे, में रखे चूने के पानी के रंग में कोई परिवर्तन देखने को नहीं मिला।

इस प्रयोग के बाद चौथे समूह के छात्रों को अपनी बात से अन्य समूह को समझाने / सत्यापित करने और बीजों में श्वसन की सही अवधारणा को समझाने में काफ़ी मदद मिली।

अगर मैं इस पूरी शिक्षण प्रक्रिया का विश्लेषण करूँ तो मुझे लगता है इसमें छात्रों को कई तरह के कौशलों के विकास में मदद मिली होगी। जैसे–

- छात्रों ने यह सीखा कि कैसे हम दूसरों को अपनी बात और विचारों को समझाने में तर्कों और प्रमाणों का सहारा लेते हैं और कैसे दूसरों से सीखने के लिए विभिन्न गतिविधियों में भाग लिया जा सकता है।
- पीयर इंस्ट्रक्शन द्वारा सीखने की इस प्रक्रिया में छात्रों ने सहयोगात्मक तरीक़े से काम करने, प्रतिक्रिया देने और अपने स्वयं के सीखने का मूल्यांकन प्राप्त करने का कौशल विकसित किया।
- इस पूरी प्रक्रिया में सभी छात्र अवधारणाओं से जुड़े विभिन्न मतों और उनके पीछे के तर्कों पर चर्चा और उसके परीक्षण से जुड़े थे, अतः उन्हें तार्किक चिन्तन और विश्लेषण करने का कौशल विकसित करने का मौक़ा मिला।
- इस पूरी प्रक्रिया में छात्रों ने अपने आत्मविश्वास और अन्तर्वैयक्तिक कौशल में सुधार किया।

पीयर इंस्ट्रक्शन में शिक्षक की भूमिका

इस विधि से शिक्षण करने में शिक्षक को पूर्व तैयारी करनी पड़ती है और बहुत सजग रहते हुए चर्चा को सही दिशा देने और पाठ से जुड़े कुछ अवधारणा प्रश्न सोचने और डिज़ाइन करने की ज़रूरत होती है जिससे कक्षा में चर्चा शुरू की जा सके और पूरी कक्षा उसमें भाग ले सके। इस पद्धति में शिक्षक ही समय-समय पर छात्रों से 'अवधारणा' प्रश्नों से जुड़े किसी ख़ास तर्क या ग़लतफ़हमी पर पुनः विचार करने के लिए कहता है। अतः जहाँ ज़रूरी लगता है वहाँ वह छोटे-मोटे प्रयोग शामिल करके चर्चा को और गति देता है।



चित्र : शुभम लखेरा

वह विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं को आधार बनाकर कक्षा से छोटे-छोटे समूहों में चर्चा करवाता है। शिक्षक ही छात्रों के प्रत्येक समूह से अपने सम्बन्धित उत्तरों को उनके तर्क के साथ साझा करने के लिए कहता है, ताकि छात्र विश्लेषण करके सही अवधारणा सीख सकें।

शिक्षक ही आवश्यकतानुसार चर्चा को सही दिशा देने के लिए अतिरिक्त जानकारी और मॉडल जोड़ता है व अन्त में पूरी बातचीत को समेकित करता है।

एक अच्छा अवधारणा प्रश्न विकसित करना

पीयर इंस्ट्रक्शन विधि द्वारा शिक्षण करने के लिए ऐसे अवधारणा प्रश्न की ज़रूरत होती है जिसपर काफ़ी तर्क-वितर्क और चर्चा होना सम्भव हो। एक अच्छे और प्रभावी अवधारणा प्रश्न की कुछ ख़ासियत होती हैं, जैसे–

- एक अच्छा अवधारणा प्रश्न छात्रों को नए या अपरिचित सन्दर्भों वाली समस्याओं को हल करने के लिए अपने पूर्व ज्ञान को जोड़ने के मौक़े देता है।
- प्रश्न ऐसा हो जिसके कई सारे जवाब आने की सम्भावना हो। मैंने देखा है कि जो प्रश्न बच्चों में आमतौर पर उपस्थित कुछ ग़लत धारणाओं से जुड़े होते हैं, उनपर काफ़ी अच्छी चर्चा होती है।
- प्रश्न न तो बहुत आसान होना चाहिए न ही बहुत कठिन। बहुत कठिन प्रश्न पर कक्षा के केवल कुछ ही बच्चे अपने विचार रखते हैं जिसकी वजह से तर्क-वितर्क में अन्य बच्चे शामिल नहीं हो पाते।
- प्रश्न की भाषा स्पष्ट होना बेहद ज़रूरी है।



चित्र : शुभम लखेरा

पीयर इंस्ट्रक्शन विधि के कुछ महत्त्वपूर्ण चरण

इसके लिए सामान्यतः हमें निम्नलिखित चरणों से गुज़रना पड़ता है। एक शिक्षक इन चरणों को अपने पाठ्यक्रम या छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संशोधित कर सकता है।

1. सभी छात्र, शिक्षक द्वारा पूछे गए अवधारणा प्रश्न पर व्यक्तिगत रूप से विचार करते हैं और 2-3 मिनट में अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

2. जब सभी छात्र प्रश्न पर अपने-अपने जवाब और उसके पीछे के तर्क को नोट कर लेते हैं तो उन्हें छोटे-छोटे समूहों में अपने उत्तरों पर चर्चा करने और 'सही' उत्तर पर आम सहमति बनाने के लिए समय दिया जाता है। छात्रों को अपने उत्तर के समर्थन में तर्क के साथ व्याख्या करनी होती है और दूसरे के तर्कों का जवाब देना होता है। इसके लिए सभी समूहों को पर्याप्त समय दिया जाता है। अतः

इस प्रक्रिया में छात्र एक दूसरे से बातचीत करते हैं, प्रश्न करते हैं, निर्देश भी देते हैं अर्थात अपने सहपाठियों को सीखा रहे होते है, और इस तरह 'पीयर इंस्ट्रक्शन' हो पाता है।

3. इसके बाद सभी समूह अपने निष्कर्षों और उनके पीछे के तर्क को बड़े समूह में रखते हैं। शिक्षक इस चर्चा में जगह-जगह पर स्पष्टीकरण देता है और आवश्यकतानुसार मॉडलिंग करता है। शिक्षक चाहे तो छात्रों के तर्कों को जाँचने के लिए कुछ नए अवलोकन और सरल प्रयोग भी करवा सकता है।

4. शिक्षक कक्षा में हुई पूरी चर्चा को आधार बनाकर अपनी टिप्पणी देता है और प्रश्न पर हुई चर्चा को समेकित करता है।

5. बच्चों की समझ में किस तरह के अवधारणात्मक बदलाव हुए हैं यह जानने के लिए शिक्षक छात्रों को दूसरी बार व्यक्तिगत रूप से प्रश्न का उत्तर देने के लिए कह सकता है।

पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण विधि की चुनौतियाँ

इस विधि के साथ कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे–

- शिक्षण के दौरान छात्रों के बीच होने वाली चर्चाएँ कई बार मुख्य अवधारणाओं से अलग होती जाती हैं। यहाँ पर चर्चा को सही दिशा देने के लिए शिक्षक को अतिरिक्त जानकारी, प्रयोग और मॉडल को जोड़ने के बारे में सोचना होता है।
- कभी ऐसा भी हो सकता है कि कुछ छात्र अपनी ग़लत अवधारणात्मक समझ अन्य छात्रों को समझाने लगते हैं। ऐसे में अगर शिक्षक ने पूरी चर्चा को अच्छे-से समेकित नहीं किया तो कक्षा में छात्रों के बीच ग़लत धारणाएँ भी बन सकती हैं। इसलिए शिक्षक को चर्चा के बीच-बीच में अपनी टिप्पणी देना, प्रश्न पर हुई चर्चा को समेकित करना और प्रश्न के सही जवाब तक पहुँचने में छात्रों की मदद करना ज़रूरी होता है।

शिव पाण्डेय, लाइफ़ साइंस में एमफिल और शिक्षा में स्नातक हैं। विज्ञान शिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण और शिक्षण सामग्री निर्माण के क्षेत्र में पिछले 10 वर्षों से कार्य कर रहे हैं। शिव अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका *आई वंडर* के सम्पादक मण्डल के सदस्य हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखंड) में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : shiv.pandey@azimpremjifoundation.org

बाल साहित्य की ज़रूरत

हेमवती चौहान

बच्चों के पास अच्छा बाल साहित्य उपलब्ध हो और फिर उनके साथ मिलकर इस साहित्य को पढ़ा जाए, सुना-सुनाया जाए या और भी अन्तःक्रियाएँ की जाएँ तो यह सीखने-सिखाने में अनगिनत सम्भावनाओं की जगह बनाता चलता है। यह लेख कुछ ठोस उदाहरणों का विस्तृत वर्णन करते हुए इन विभिन्न सम्भावनाओं को देखने और समझने में मदद करता है। लेख कुछ उन मानदण्डों को भी इंगित करता है जो यह समझने में मदद करते हैं कि अच्छा बाल साहित्य हम किसे कह सकते हैं। सं.

एक अच्छा पाठक बनने के लिए आवश्यक है– पढ़े हुए को समझ पाना और तब उसका अर्थ समझते हुए उसे अपने जीवन से जोड़ पाना। यह सम्भव कर पाने में बाल साहित्य काफ़ी मददगार हो सकता है और इसलिए हमारी कक्षाओं में बाल साहित्य की ज़रूरत को रेखांकित भी किया जाता है। साहित्य सम्भावनाओं से भरा होता है, किसी भी पाठक द्वारा इसमें अपने अनुभवों को जोड़ा जा सकता है, नए अर्थ बनाए जा सकते हैं। साहित्य दुनिया की समझ को विस्तार देने में मदद करता है। इसके अलावा साहित्य पाठकों को आनन्द देता है और यही एक वजह है कि यह बच्चों को स्थाई पाठक बनाने में भी अहम भूमिका अदा करता है। अच्छे साहित्य के माध्यम से किताबों से जुड़ने का अनुभव बच्चों को लगातार मिलना चाहिए। स्कूलों में निर्धारित टाइम टेबल में सारा ध्यान पाठ्यपुस्तकों को पढ़ना-लिखना सिखाने की तकनीकियों पर केन्द्रित रहता है। ज़रूरत है स्कूल के प्रयासों में गहनता लाने और बच्चों को पढ़ना सिखाने की अक्षर पद्धति से आज़ाद होकर एक नए सिरे से सोचने की। पढ़ने के मायने को विकसित करने की भी आवश्यकता है, साहित्य वह सम्भावनाएँ देता है।

बाल साहित्य है क्या? इसके मायने सिर्फ़ बच्चों के पढ़ने के लिए सामग्री नहीं है... इसका कहीं गहरा अर्थ है। कोई भी किताब जो बच्चों को अच्छी लगती है, वह किशोर और वयस्क पाठकों को भी पढ़कर अच्छी लग सकती है। एक अच्छी सामग्री की ख़ासियत ही यही है कि वह सभी के मन को भा पाए। हाँ, अगर बच्चों के स्तर की किताब होगी तो ख़ुद से अर्थ बनाने और समझने में उन्हें शायद थोड़ी मदद मिलेगी। इसलिए कहा भी जाता है कि किताबें ऐसी हों जो बच्चों को उनसे जोड़ें, जिनमें उनके मन की बातें हों, जिन्हें पढ़कर वह ख़ुद के अनुभव उनसे जोड़ पाएँ और उनमें स्वयं को खोज पाएँ,



कहानियों का आनन्द उठा पाएँ। एक अच्छे बाल साहित्य के महत्त्व को समझने में यह उदाहरण मददगार होगा।

कक्षा तीन में किताब पढ़ने के दौरान मैंने बच्चों से कुछ प्रश्न पूछे, जैसे– आपको किताबें पढ़कर कैसा लगता है? एक बच्ची ने जवाब दिया, "अच्छा लगता है।" मैंने पूछा, "क्यों?" बच्ची ने कहा, "क्योंकि इनमें हमारे मन की बात होती हैं, पढ़कर हँसी आती है, मज़ा भी आता है।" एक दूसरे बच्चे ने कहा, "लगता है जैसे हम किसी से बात कर रहे हैं।" कुछ बच्चों ने जवाब दिए जैसे ऐसी चीज़ें दिखती हैं जो देखी तो नहीं, पर हैं, जैसे– शेर, हिरण... और ऐसी भी जो हैं ही नहीं, जैसे– डायनासौर और भी बहुत सारी चीज़ें। एक बच्चे ने कहा, "मैं भी ऐसी कहानी लिखना चाहता हूँ।" ये बच्चे नियमित पाठक भी रहे हैं। स्कूल बन्दी के टाइम पर भी।

बच्चों की किताबों की बनावट विविधता भरी होनी चाहिए। कुछ सामान्य से बड़ी किताबें, कुछ छोटी, कुछ आकार में चौड़ी किताबें, रंग-बिरंगी चित्रों से सुसज्जित, कार्टून, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित किताबें बच्चों को बहुत लुभाती हैं।

बच्चों को समझने के लिए बातचीत को एक अहम साधन माना गया है। पाठ्यपुस्तकों से इतर किताबें बच्चों के साथ खुलकर बातचीत करने के ढेर सारे अवसर उपलब्ध कराती हैं। जब बच्चों में इस तरह की किताबों को पढ़ने की आदत व ललक लगेगी तब उनमें लेखन क्षमता का भी विकास होगा। बच्चे में पढ़ने की आदत विकसित करने के लिए यह भी अच्छा होता है कि हम स्वयं भी बच्चों के साथ पढ़ें। जब हम उनके साथ मिलकर पढ़ते हैं, बच्चे यह सब देखते हैं, अवलोकन करते हैं और आगे पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं। यह भी कि बच्चों को प्रतिदिन कुछ पुस्तकें पढ़ने के लिए देना और उनपर बातचीत करना, उनको किताबों को चुनने, उलटने पलटने की आज़ादी देना भी बच्चों में किताबें पढ़ने की उत्सुकता जगाता है। ऐसा मेरा अनुभव रहा है। जब बच्चे किताबों से जुड़ने लगें तब किताबों पर कुछ गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं। जैसे– कभी बच्चों को ख़ुद कहानी पढ़कर सुनाना, बीच-बीच में उनसे कहानी को लेकर अनुमान लगाने को कहना, उनके अनुभवों को जोड़ने के लिए कहना, प्रश्न पूछना और बच्चों को प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित करना, स्वतंत्र पढ़ने के लिए छोड़ना, कभी समूह में पढ़ना तो कभी दो-दो की जोड़ी में, आदि। ऐसी और भी बहुत-सी गतिविधियाँ हो सकती हैं।

पाठ्यक्रम में कहानियाँ और कविताएँ

अच्छी सामग्री पाठ्यक्रम को सरल व सहज बनाने में सहयोग देती है। स्कूली पाठ्यपुस्तकें कभी भी आद्योपान्त नहीं पढ़ी जातीं। बच्चों को पूरी किताब पढ़ने का डर बना रहता है लेकिन जब हम पाठ्यपुस्तक से इतर किताबें शामिल करते हैं तो बच्चे उनको देखने, पलटने और पढ़ने में दिलचस्पी दिखाते हैं। बहुत-सी किताबें ऐसी होती हैं जो पाठ्यक्रम को समझने सरल बनाने में और पाठ्य सामग्री को विस्तार देने, ठीक से पढ़ाने में हमारी मददगार साबित होती हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करती हूँ जो शायद यह समझने में मददगार होंगे कि पाठ्यपुस्तक को ठीक से पढ़ाने में इतर किताबें किस प्रकार मदद करती हैं। 'अनोखा रिश्ता' पेड़ों की दुनिया की कहानी है। हमारी सभी कक्षाओं व सभी विषयों, चाहे हिन्दी, अँग्रेज़ी, सामाजिक विषय, में पेड़-पौधे व पत्तों को लेकर पाठ्य सामग्री उपलब्ध है, जब इसी तरह की कहानी बच्चों के समक्ष एक बाल साहित्य के





रूप में रंग-बिरंगे, ढेरों आकर्षक चित्रों व सरल, स्पष्ट, छोटे-छोटे वाक्यों में लिखी किताब में कहानी के रूप में उपलब्ध होती है तो अनायास ही इसमें लिखी बातों को बच्चे मज़े-मज़े में पढ़ते हुए आत्मसात कर रहे होते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण 'भालू ने खेली फुटबॉल' है। यह पाठ्यपुस्तक में एक कहानी के रूप में है और अलग ही ढंग से प्रस्तुत है। रंगीन, मोटे व चमकदार पर छोटे-छोटे वाक्य इस पाठ्य सामग्री को अधिक सरल बनाते व विस्तार देते हैं। एक छोटी-सी किताब के रूप में यह जब बच्चों के हाथ में होती है तो उन्हें लगता है कि हम पूरी पुस्तक पढ़ रहे हैं और होता क्या है, असल में एक सम्बोध को अच्छी तरह समझ पा रहे होते हैं। है न मज़ेदार रूप से सीखना! ऐसा ही एक उदाहरण है 'अनोखे घर के बाशिन्दे'– इसमें चिड़ियों का संसार है। जब बच्चों के हाथ में यह किताब आती है, तो वे इसे अनायास ग्रहण करते चले जाते हैं। ऐसे ही 'लालू और पीलू' की कहानी, 'बत्तख के अण्डे', 'चूहे की कहानी', 'बाघ की कहानी', रसोईघर, खान पान, फ़सलें, त्योहार, बादल, तारे, सूरज, मौसम इन सभी से सम्बन्धित पाठ्य सामग्री हमारी पाठ्यपुस्तकों में है और बाल साहित्य में ये छोटी-छोटी किताबों के रूप में रोचक तरीक़े से उपलब्ध है।

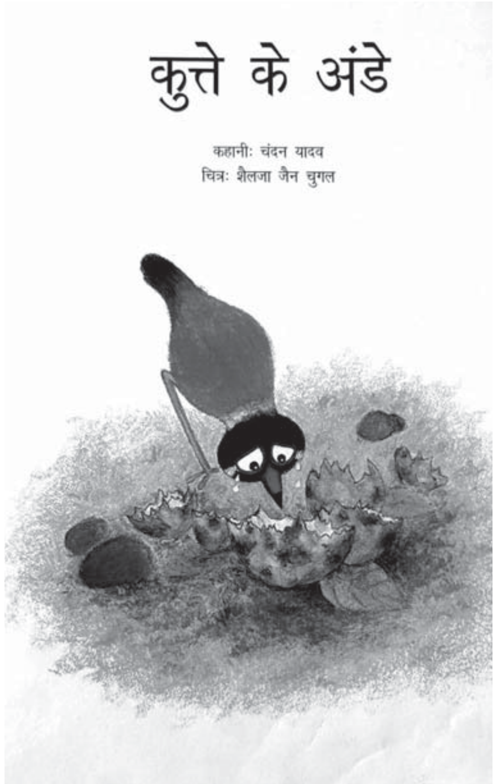
बच्चों के साथ किताबों पर बातचीत

अलग-अलग कहानियों और कविताओं को पढ़ना, सीखने में कैसे मदद करता है, क्या-क्या सीखने में मदद करता है, बच्चों में इसके ज़रिए समझ कैसे विकसित होती है, उन्हें क्या लाभ मिलता है, कैसे यह भाषा शिक्षा में सहयोगी हो सकती हैं, इन सब प्रश्नों को गहराई से समझने के लिए मैंने बच्चों के साथ इसपर काम शुरू किया। यह कैसे होगा, इस बारे में कुछ ख़ास नहीं सोचा था लेकिन काम शुरू कर दिया। बच्चों को बाल साहित्य की किताबें देती, कुछ बच्चे तो बहुत व्यस्त होकर पढ़ते लेकिन कुछ बच्चे ऐसे भी थे जो जी चुराते थे फिर भी उन्हें समझा-बुझाकर ज़बरदस्ती दे देती थी। लाइब्रेरी का समय भी निर्धारित कर दिया था लेकिन यह समय सारिणी के हिसाब से व्यवस्थित नहीं चल पा रहा था। मुझे जब भी लगता कि अभी ख़ाली समय है तभी मैं बच्चों को किताबें पकड़ा देती और जब भी समय मिलता मैं उन किताबों को स्वयं भी पढ़ती थी। पूरी नहीं भी पढ़ पाती तो सरसरी निगाह ज़रूर डालती थी। कभी बच्चों से बातचीत करती तो किताब के बारे में जान लेती थी। इससे एक फ़ायदा यह हुआ कि बच्चे रुचि ले रहे थे और उन्हें यह भी आभास रहता कि मैडम भी पूरे उत्साह के साथ हमारे साथ हैं। इस प्रक्रिया से एक दूसरे के साथ काम करने की जो बॉन्डिंग बनती है यह काम के आनन्द को दुगना कर देती है और जो हम चाहते हैं वह सहज ही सामने आता रहता है।

तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ मैंने किताब पर काम किया। वैसे मेरा हर सम्भव प्रयास रहता है कि प्रत्येक किताब पर बात करूँ लेकिन सभी किताबों, कहानियों पर विस्तृत बात नहीं हो पाती है। मैंने कुछ किताबों पर बात की, जैसे– 'अनोखा रिश्ता' कहानी पर मैंने कुछ प्रश्नों का निर्माण किया। सबसे पहले बच्चों को मुखपृष्ठ दिखाकर, चित्र में कौन-कौन दिख रहे

हैं और कहानी में क्या होगा, इसपर अनुमान लगाने के लिए कहा। बच्चों ने तुरन्त जवाब दिया कि चित्र में बच्चा और एक पेड़ दिखाई दे रहे हैं। इस बच्चे और पेड़ में दोस्ती होगी। किसी ने कहा, “यह बच्चा पेड़ को प्यार करता होगा।” किसी ने कहा, “यह छुपने का खेल खेल रहा होगा।” मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था कि इतना सटीक अनुमान लगाया गया था। कहानी में आगे क्या है, यह भी बच्चे अनुमान लगाकर बता रहे थे। मैंने बच्चों को कहानी पढ़ने के लिए दी, फिर पढ़कर सुनाई। बीच-बीच में चित्रों पर और कहानी के अनुसार प्रश्न पूछती रही कि कौन-से फल का पेड़ है? बच्चे और उसके दादाजी के बीच में कैसा रिश्ता है? बच्चों ने कहा, “बच्चे और दादाजी के बीच में बहुत प्यार भरा रिश्ता है। दादाजी बच्चे को बहुत प्यार करते हैं और बच्चा भी दादाजी को बहुत प्यार करता है। वह पेड़ को अपना दादा मानता है।” बच्चे कहानी को समझते हुए सही जवाब दे रहे थे। मैंने पूछा कि मौसमी फल कौन-से होते हैं? आपके आसपास कौन-से फल के पेड़ हैं? बच्चों ने बिलकुल तपाक से जवाब दिया, “आम, पपीता, अमरूद, बेर का पेड़।” पेड़ों के फ़ायदे पूछे? बच्चों ने तुरन्त बहुत सारे फ़ायदे गिना दिए कि लकड़ी मिलती है, फल मिलते हैं, आदि। जिया ने कहा, “पत्तों से त्योहारों पर बन्दनवार बनाते हैं, पूजा में रखते हैं।” आदर्श ने कहा, “फ़र्नीचर मिलता है।” मैंने पूछा, “क्या पेड़ों से दवाइयाँ भी मिलती हैं?” बच्चों ने कहा, “हाँ।” मैंने पूछा, “ऐसे कौन-से पेड़ होते हैं?” बच्चों का जवाब था, “नीम, नींबू, हल्दी, तुलसी, करेला।” मैंने पूछा, “अनार कैसे दवाई देता है?” बच्चों ने जवाब दिया, “इसको खाने से ख़ून बढ़ता है।” मैंने पूछा, “आप पेड़ों की देखभाल करते हैं?” बच्चों का जवाब था, “हाँ, हम पानी देते हैं।” मैंने पूछा, “यदि कोई आपके यहाँ पेड़ काटने आएगा तो आप क्या करेंगे?” बच्चों ने कहा, “मना कर देंगे पेड़ काटने के लिए, उन्हें इसके फ़ायदे बताएँगे फिर भी अगर वह नहीं माने तो हम पेड़ों से चिपक जाएँगे।” ऐसा जवाब वह भी तुरन्त, प्रतिक्रिया देख-सुन कर मैं गदगद थी।

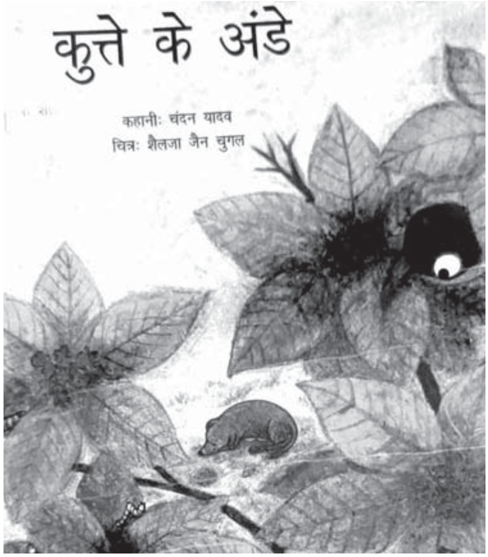
ऐसा ही एक और अनुभव साझा करना चाहूँगी। यह कहानी थी– ‘कुत्ते के अंडे’। इसका शीर्षक व मुखपृष्ठ मैंने बच्चों को दिखाया। वे विस्मित से दिखाई दिए और ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे कि कुत्ते के भी अण्डे होते हैं। मैंने बच्चों से अनुमान लगाने के लिए कहा। थोड़ी देर वह शान्त रहे, फिर बोले, “मैम कुत्ता अण्डा थोड़े ही देता है वह तो बच्चे देता है।” उन्होंने अपने आसपास के



उदाहरण भी दिए। मैंने पूछा, “अण्डे कौन-कौन देते हैं?” वंश कुमार बोला, “मुर्ग़ी अण्डे देती है।” मानवी बोली, “बत्तख भी अण्डे देती है।” फिर और बच्चे भी बोलने लगे कि मछली, छिपकली, साँप यह सब अण्डे देते हैं। मैंने कहा, “हाँ, बात तो सही है कुत्ते अण्डे तो नहीं देते लेकिन किताब का शीर्षक तो कह रहा है, देखो चित्र भी यही बता रहा है।” लेकिन तभी मीनाक्षी बोली, “मैम देखो, कुत्ता कुछ सोच रहा है, क्या सोच रहा है यह नहीं पता लेकिन मुर्ग़ी और चिड़िया तो अपने अण्डों को अपने नीचे रखकर गरमाई देते हैं।” मैं

समझ रही थी कि बच्चे क्या कहना चाह रहे हैं। मैंने कहा, "चलो किताब पढ़कर ही पता करते हैं।" किताब पढ़कर पूरी बात साफ़ हो गई। बच्चे ख़ुश थे और जान गए थे कि अण्डे टिटहरी के हैं और वह अण्डे से निकलते ही जिसे पहली बार देखते हैं उसे अपनी माँ समझते हैं। कहानी पूरी होने पर बच्चे आपस में बात कर रहे थे कि अगर वह हमें पहली बार देखेंगे तो हमें भी माँ समझेंगे और ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। कहानी पढ़कर बहुत ही सुखद अहसास हो रहा था और बच्चों के मन की बहुत-सी बातें जानकर अच्छा लग रहा था। ऐसी ही *बरखा* सीरीज़ की बहुत-सी कहानियाँ हैं जिनसे बच्चे स्वयं को जोड़ते हैं अपने आसपास से उनकी तुलना करते हैं। अपनी समानता उन कहानियों में देखते हैं और बहुत आनन्द लेते हैं और यहीं से उनकी भाषा की समझ बनने लगती है। जब भोजन माताएँ ख़ाली दिखाई देती हैं तो मैं उनको भी बाल साहित्य की किताबें पढ़ने के लिए दे देती हूँ। अकसर सातवीं, आठवीं, और दसवीं के कुछ बच्चे भी किताबें ले जाते हैं।

इस पूरी क़वायद में सबसे आवश्यक एक शिक्षक का पूरी तरह सक्रिय व स्वयं उत्साही बने रहना है। बच्चे में पढ़ने की आदत विकसित करने के लिए स्वयं पढ़ना और बच्चों व शिक्षक के बीच आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना, एक



दूसरे को समझना और विश्वास करना, बच्चे को पढ़ने व अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता देना उसे स्थाई पाठक व जिज्ञासु बनाने में मदद करेगा। पाठ्यपुस्तकों से इतर साहित्य बच्चों को अपने विचार रखने, स्वतंत्र प्रतिक्रिया देने, सवाल उठाने और अपने अनुभवों को शामिल करने के कई अलग-अलग मौक़े उपलब्ध कराता है। इसकी उपेक्षा करना इन मौक़ों को कम करना है, और इस तरह यह बच्चों को भाषा, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, त्योहार, रिश्तों से जोड़े रखने के संस्कार से भी वंचित रख सकता है।

सन्दर्भ

1. पाठ्यपुस्तक *रिमझिम*
2. 'बात', प्रो. कृष्ण कुमार (*बच्चे की भाषा और अध्यापक* पुस्तक से)
3. रीडिंग कार्नर पर एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पोस्टर और इससे सम्बन्धित विभिन्न लेख
4. 'कहानियाँ कहाँ खो गईं' (प्रो. कृष्ण कुमार की पुस्तक *दीवार का इस्तेमाल* से)
5. बाल साहित्य की किताबें— अनोखा रिश्ता, भालू ने खेली फुटबॉल, बत्तख के अण्डे, कुत्ते के अण्डे, चूहे की कहानी, नाव की कहानी, *बरखा* सीरीज़ की किताबें

हेमवती चौहान राजकीय प्राथमिक विद्यालय पार मजरा, विकासखण्ड काशीपुर, उत्तराखंड में शिक्षिका हैं। आपको बाल साहित्य पढ़ना और बच्चों के किताबों पर काम करना अच्छा लगता है। आपकी बच्चों से बातचीत करने, उन्हें समझने में गहरी रुचि है।

सम्पर्क : hemachauhan8777@gmail.com

आपदा में सामाजिक विज्ञान का चेहरा

अंजना त्रिवेदी

बेहतर सीखने-सिखाने के सन्दर्भ में यह हमेशा रेखांकित किया जाता रहा है कि बच्चों के अनुभवों को सुनना-समझना और उन्हें शिक्षण में जगह देना ज़रूरी है। अकादमिक दृष्टि के साथ ही साथ भावनात्मक दृष्टि से भी उनसे बातें करना, उनपर ग़ौर करना और यह समझना कि उनके इर्द-गिर्द क्या घटित हो रहा है; वे इसे कैसे देखते और समझते हैं। कोविड आपदा का दौर एक ऐसा जीवन प्रसंग है जिसमें सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से जानने, समझने और अपनी शिक्षण योजना को सन्दर्भयुक्त बनाने और उसका प्रभाव जाँचने के तमाम मौक़े हैं। लेखिका ने इस आपदा की पृष्ठभूमि में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की योजना और उससे जुड़े मसलों पर समालोचनात्मक चिन्तन को रेखांकित किया है। सं.

एक शिक्षक ने कहा, "स्कूल में तो फिर भी किताबें, ब्लैकबोर्ड, चाक, नक़्शे-चार्ट और ग्लोब रहते हैं। यहाँ मोहल्ला-मोहल्ला जाकर पढ़ाने की कुछ युक्ति ही नहीं सूझ रही है। सब तरफ़ अफ़रातफ़री है, लोगों की समस्याएँ हैं। पढ़ाने के बीच बहुत डिस्टरबेन्स भी होता है। कैसे पढ़ाएँ, क्या पढ़ाएँ?"

"ऐसे में क्या पढ़ाई और क्या प्रोजेक्ट। महामारी का डर है सो अलग। सरकार कह रही है जाकर पढ़ाओ। कुछ हो गया तो कौन ज़िम्मेदारी लेगा। सरकार तो नहीं करने वाली कुछ।"

इन दोनों बातों में शिक्षकों की बेबसी, उलझन, डर और तंत्र के प्रति अविश्वास-सा झलक रहा था। दरअसल हम सेमिनार के लिए शिक्षकों से उनके कक्षा शिक्षण के अनुभवों को लिखने, बच्चों के साथ प्रोजेक्ट करने, अपनी कक्षा योजना पर रिफ़्लेक्ट करने और फिर परचे के रूप में उसे प्रस्तुत करने की तैयारी करने के काम में लगे हुए थे, इसी दौरान उनकी ऐसी तमाम अभिव्यक्तियाँ सुनने को मिलीं।

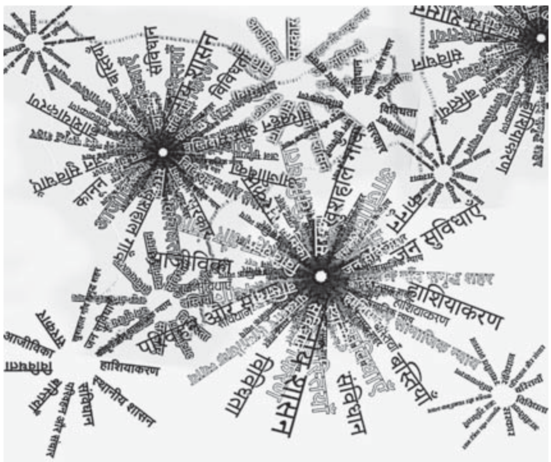
एक दिन अचानक एक शिक्षिका का फ़ोन आया, "मैम, लॉकडाउन के दौरान बच्चों को सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई कैसे कराएँ? क्या टॉपिक पढ़ाएँ और कैसे पढ़ाएँ? मोहल्ला कक्षा में सभी बच्चे साथ में बैठ रहे हैं, सबका स्तर अलग-अलग है। ऐसे में बड़ी मुश्किल हो रही है। इस साल तो सामाजिक विज्ञान बिलकुल नहीं पढ़ाया जा सकेगा।"

सामाजिक विज्ञान की एक विद्यार्थी होने के नाते और पिछले लम्बे समय से अध्येताओं के साथ काम करते हुए ये समझ बनी है कि जीवन की जो भी उठा-पटक है, उसके तार कहीं-न-कहीं शिक्षा से जुड़े तो हैं। मसलन हम, हमारा परिवेश, हमारी पारस्परिकता, हमारे संघर्ष और चुनौतियाँ व इन सबके अन्तर्सम्बन्ध में राज-काज की व्यवस्था। इन सबसे मिलकर ही सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या बनी है। संकट के इस दौर में यह समझ और पुख़्ता ही हुई है। जन स्वास्थ्य, बीमारी, संक्रमण, भोजन, राहत सामग्री, पलायन यात्रा, शिक्षा, सरकार, साफ़-सफ़ाई, काम-धन्धे, बेरोज़गारी, मन्दी,

महँगाई, मीडिया, ग़रीबी, खेती-किसानी, ज़मीन विवाद, हिंसा, मवेशी, राशन वितरण, पुलिस। यह सबकुछ जो हम रोज़ाना अनुभव कर रहे हैं, बच्चे जो देख और समझ रहे हैं यह शिक्षा का ही हिस्सा है।

अगर हम सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के अध्यायों को देखें तो उनमें आते हैं– सरकार, संविधान, विविधता, स्थानीय शासन, बस्तियाँ, परिवहन और संचार, आजीविकाएँ, ख़ुशहाल गाँव-समृद्ध शहर, हाशियाकरण, जन सुविधाएँ, क़ानून और सामाजिक न्याय, नगर व्यवस्था, व्यापारी, बाज़ार, वग़ैरह।

वैसे तो यह मुद्दे हमेशा ही मौजूद हैं लेकिन इस महामारी के दौरान इनमें से कई मुद्दे काफ़ी मुखर रूप से सामने आए और कई व्यक्तियों, बच्चों और परिवारों ने इन्हें अनुभव किया। इस समय में सामाजिक विज्ञान के इस व्यापक दायरे में शिक्षा लेने वाला विद्यार्थी इस दौर से क्या महसूस कर रहा है? इसमें उसका भविष्य किस प्रकार से दिख रहा है? इस पूरे दौर में सरकार, समाज, बाज़ार की क्या भूमिकाएँ रही हैं? उनके बारे में बच्चों की क्या समझ बनी है? इन सबका दस्तावेज़ीकरण कर और फिर उसका विश्लेषण करने से, आगे बच्चों के साथ किस तरह काम करना है इस बारे शायद हमें दृष्टि मिल सके।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

बेहतर सीखने-सिखाने के सन्दर्भ में यह हमेशा रेखांकित किया जाता रहा है कि किताबी शिक्षा के बाहर बच्चों के अनुभवों को सुनना ज़रूरी है। अकादमिक दृष्टि के साथ ही भावनात्मक दृष्टि से भी उनसे बातें करना, उनपर ग़ौर करना और यह समझना ज़रूरी है कि इस दौर में उन्होंने क्या देखा। उनके मुखिया, पार्षद, स्थानीय प्रतिनिधि या ग्राम सभा की इस दौर में क्या भूमिका रही है? आसपास के नाते-रिश्तेदारों, पड़ोसियों ने किस प्रकार की मदद की। माता-पिता जहाँ काम करते थे वहाँ उनके रोज़गार की स्थिति क्या थी? राहत के लिए क्या मिला? काम से निकाल दिया या काम छूट गया तो फिर घर-परिवार का राशन पानी कैसे चला? यदि बच्चे गाँव चले गए तो कैसे गए? रास्ते में क्या देखा? गाँव में क्या हालात थे? रोज़ाना राशन की व्यवस्था कैसे बना रहे थे? स्वास्थ्य विभाग की टीम क्या आपके गाँव, मोहल्ले में जाँच करने आई थी? घर में कोई बीमार हुआ था तो आपने क्या किया? इस दौरान यातायात के साधनों की क्या उपलब्धता थी? इस आपात स्थिति में सरकार कहाँ-कहाँ दिखाई दी? इन स्थितियों में घर में निर्णय कौन ले रहा था? ये ऐसे प्रश्न और चर्चा के सूत्र हैं जो विषयों के अन्तर्सम्बन्धों को भी उजागर करते हैं और इन्हें गहराई से समझने का मौक़ा भी देते हैं।

एक स्कूली बच्चे के साथ हुई मेरी बातचीत के उदाहरणों से इसे समझने की कोशिश करते हैं :

बच्चे अचानक फ़ोन कर पूछ लेते हैं, “मैम, स्कूल कब खुल रहे हैं?” उनसे थोड़ी ही बात करो तो उनके घर का पूरा हाल बयाँ हो जाता है।

ऐसे ही एक बच्चे साहिल से बातचीत का एक अंश (दिनांक 3 जुलाई 2020, सुबह समय 9:00 बजे) :



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

साहिल : "गुड मार्निंग, मैम"।

मैं : "अरे कौन! साहिल!!"

साहिल : "मैम, आपने मेरी आवाज़ से ही पहचान लिया।"

(साहिल पिछले वर्ष कक्षा 8वीं का बच्चा रहा है इस वर्ष कक्षा 9वीं में प्रवेश किया है। पिछले वर्ष सामाजिक विज्ञान के बाल शोध मेले में वह काफ़ी उत्साह के साथ शामिल हुआ था।)

मैं : "अरे, तुम कैसे हो? क्या कर रहे हो?"

साहिल : "कुछ नहीं कर रहे हैं, मैम। यह स्कूल कब खुलेगा?"

मैं : "इसकी जानकारी तो मुझे नहीं है। लेकिन तुम तो अब बड़े स्कूल में जाओगे ना।"

साहिल (ख़ुशी से) : "हाँ मैम, पर स्कूल तो खुलें।"

मैं : "अच्छा, स्कूल में ऐसा क्या है? तुम स्कूल खुलने के पीछे पड़ गए हो।"

साहिल : "मैम, घर में अच्छा नहीं लग रहा है। दोस्तों से मिलने का मन है।"

मैं : "हाँ, दोस्तों को मिस कर रहे हो। घर में सब कैसे हैं? लॉकडाउन में क्या किया?"

साहिल : "मैम, घर में सबकुछ ठीक नहीं है। मार्च में पिताजी, हम भाई-बहन और माँ को छोड़कर कहीं चले गए हैं।"

मैं : "अरे! कहाँ और क्यों? फिर तुम्हारा घर कैसे चला?"

साहिल : "हाँ, उनका दिमाग़ ही ऐसा है कि वह हमें छोड़कर ही चले गए।"

मैं : "अरे! कहाँ गए? और इस दौरान तुम सबके राशन पानी की व्यवस्था कैसे हुई?"

साहिल : "थोड़ी दिक़्क़त तो हुई। मम्मी जहाँ काम पर जाती थीं वहाँ से भी पूरे पैसे नहीं मिले। राशन देने जो लोग आए शुरू में, वह राशन कार्ड माँग रहे थे। वह हमारे पास नहीं था। फिर दो-एक दिन हमने घर में ही पड़े चावलों की लापसी पी थी। हमारे स्कूल में पहले एक भैया थे। उनकी राशन की दुकान है। मैंने उन्हें फ़ोन किया और कहा कि हमें राशन चाहिए। उन्होंने कहा कि कल आकर ले जाना। मैंने कहा कि मेरे पास पैसा नहीं है। उन्होंने कहा कौन पैसा माँग रहा है? भैया बहुत अच्छे हैं। उनके यहाँ से राशन आया तब हमने पेटभर खाना खाया।"

मैं : "अभी क्या हाल हैं?"

साहिल : "अभी मैं फ़्री था तो उन भैया की दुकान पर काम कर रहा हूँ। इसके अलावा शाम को 100 रुपए की सब्ज़ी ख़रीदकर 125 रुपए और कभी 150 रुपए में बेच देता हूँ। तो थोड़ा कमा रहा हूँ।"

मैं : "मम्मी काम पर जा रही हैं क्या?"

साहिल : "हाँ, दूसरी जगह काम पर लगी हैं।"

मैं : "जब स्कूल खुल जाएँगे तो तुम काम छोड़ दोगे?"

साहिल : "मैम, स्कूल में पूरे समय के लिए नहीं जाऊँगा। काम तो करना ही होगा न। घर भी तो चलाना है।"

मैं : "फिर पढ़ाई का क्या?"

साहिल (उत्साह से) : "दोनों काम कर लूँगा न।"

मैं : "अच्छा। उधर आऊँगी तो फ़ोन कर लूँगी। अपन मिलेंगे।"

साहिल (उतावलेपन से) : "मैम, आप तो बता दीजिएगा, कब आ रही हैं? मैं स्कूल पहुँच जाऊँगा।"

मैंने भारी मन से फ़ोन रखा। मेरी आँखों के सामने साहिल दिख रहा था।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

आसान शब्दों में *एनसीएफ़ 2005* की इबारत को मानें तो वह कह रही है– "सामाजिक विज्ञान, मानव एवं मानवीय सम्बन्धों एवं व्यवहारों का उसके समाज के सन्दर्भ में अध्ययन करता है। इससे समाज की किसी परिघटना (ऐसी घटना जिससे हमारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जुड़ाव रहता है और जिसे अनुभव करने का हमारा एक नज़रिया होता है) व घटनाक्रम (कई घटनाओं का सिलसिलेवार विवरण) का उसकी भौगोलिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्रियों का मानना है कि मानव व्यवहार और सम्बन्धों को उसका परिवेश प्रभावित करता है। इसलिए समाज की किसी घटना को समझने के लिए विभिन्न विषयों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उसे समझना अधिक उपयुक्त होता है। इस प्रकार भूगोल, अर्थशास्त्र, सामाजिक-राजनैतिक (नागरिक शास्त्र) इत्यादि विषय सामाजिक विज्ञान से जुड़ते हैं''।

इसके अलावा, इस बात को आज ही समझने की ज़रूरत है कि इस आपदा में बच्चों ने सरकार के रूप में क्या देखा? क्या उन्हें सिर्फ़ पुलिस ही दिखाई दी? क्या स्थानीय सरकार या ग्राम सभा की आपातकालीन बैठक हुई या उनके यहाँ का कोई जन प्रतिनिधि आया था? यदि आया तो उसने किस प्रकार की मदद की? इसके अलावा घर में माता-पिता के रिश्तों को समझना, उनके अपने नाते-रिश्तेदारों और पड़ोस को भी अभी समझा जा सकता है।

बच्चों के रोज़ाना जिए हुए अनुभवों को संविधान के मूल्यों से जोड़कर देखा जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान शिक्षण की बेहिसाब सम्भावना है, जिसे बच्चों के साथ देखा जा सकता है। इसकी रोशनी में स्थितियों के आलोचनात्मक चिन्तन के साथ सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पहलू को देखा और समझा जा सकता है, उसका विश्लेषण और मूल्यांकन करवाया जा सकता है।

भोपाल से क़रीब 35 किमी दूर लाम्बाखेड़ा स्कूल में पढ़ने वाली टीना ने इस वर्ष 87 प्रतिशत अंकों से कक्षा आठवीं पास कर ली है। कोविड–19 के दौर में किए गए काम और घर की स्थिति के बारे में टीना ने फ़ोन पर बताया, “मैम, हम इसके पहले लॉकडाउन नहीं जानते थे। मुझे शुरू में लगा कि ऐसे ही कह रहे हैं शायद हमारे लाम्बाखेड़ा में इसका असर नहीं होगा। मेरे पिताजी ने दो साल पहले एक ऑटो ख़रीदा था। उसी से हमारा घर चलता था। यह ऑटो लोन पर ख़रीदा था। उसकी क़िश्त भी जाती है। एकदम लॉकडाउन से ऑटो नहीं चला पाए और हमारी कमाई का साधन एकदम ख़त्म हो गया। कुछ दिन तक घर में रखे राशन से काम चल गया। किन्तु फिर हमें समझ ही नहीं आ रहा था कि हम क्या करें? हमारे पास के मोहल्ले में अन्य समुदाय के परिवार रहते हैं। उनके समुदाय ने सुबह–शाम उनके लिए चौका (रसोई) लगाई किन्तु हमारे मोहल्ले में तो ऐसा कुछ नहीं था। एक बार, मैंने अपने पिताजी को कहा कि हम उनकी रसोई से खाना लेकर आ जाएँ तो पिताजी ने मना कर दिया और कहा कि वह साफ़–सफ़ाई से नहीं बनाते हैं।”



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

“फिर पिताजी को पता चला कि भोपाल में सब्ज़ी की क़िल्लत हो रही है तो उन्होंने एक पड़ोसी सब्ज़ी फ़ार्म वाले से चर्चा की। किसी साहूकार से 5000 रुपए उधार लेकर सब्ज़ी को ऑटो में रखकर भोपाल जाने लगे। इसके लिए मेरे पिताजी रात में ही फ़ार्म से सब्ज़ी लेकर रख लेते थे और सुबह 4:00 बजे ऑटो से निकल जाते थे। भोपाल के 10 नम्बर पर ऑटो खड़ा करके बिक्री करते थे। उस दौरान मुझे ख़ूब डर लगता था क्योंकि पुलिस बिना कारण ख़ूब मार रही थी। हम रात में 2:00 बजे उठकर खाना और चाय पन्नी में बाँधकर दे देते थे। जब तक पिताजी घर नहीं आते थे, हम डरते रहते थे।”

टीना ने आगे बताया, “उसके बाद सागर में एक एक्सीडेंट में मेरे मामा की डेथ हो गई। हमारे पास पैसा नहीं था। ऐसे में पापा ने ऑटो बेच दिया और कोई वाहन तो चल ही नहीं रहे थे। उस पैसे से पापा ने सागर के लिए गाड़ी की। हम सब गाड़ी से गए और वह पैसा गाड़ी में लग गया, वहाँ पुलिस को भी देना पड़ा क्योंकि दो समूह में झगड़े हो गए थे। नानी बूढ़ी हैं, उनके राशन पानी की भी व्यवस्था पापा को ही करनी थी। अब पापा कुछ नहीं कर रहे हैं। अभी उधारी से हमारा घर चल रहा है। अभी मैंने सिलाई करना सीख लिया है। मैम, मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ किन्तु इस उम्र में पापा–मम्मी को परेशानी में भी तो नहीं देख सकते हैं। कक्षा 9वीं में एडमिशन के लिए 1100 रुपए लग रहे हैं। उसकी व्यवस्था भी करनी होगी।”

उसने उत्साह के साथ बताया, “मैंने पास वाली दीदी से 9वीं की किताब ले ली हैं। अभी मैंने घर में ख़ुद से पढ़ाई शुरू कर दी है। मैम, सामान्य दिन कब शुरू हो जाएँगे? सरकार हमारे लिए कुछ करेगी क्या?”

मैंने पूछा : “क्या करेगी?”

टीना के कहा : "जैसे पापा के रोज़गार के लिए सब्सिडी में पैसा देगी। मेरे लिए स्कॉलरशिप या हम सब के लिए राशन पानी की व्यवस्था।"

मैंने पूछा : "अभी राशन की क्या व्यवस्था है?"

उसने बताया : "केवल 10 किलो चावल, 10 किलो गेहूँ और 2 किलो चना मिला है सरकारी राशन की दुकान से। इसके अलावा कुछ नहीं दिया। पास वालों को तो खाने का तेल और शक्कर भी मिली है, हमें क्यों नहीं? इसकी शिकायत कहाँ कर सकते हैं मैम? पर, शिकायत के बाद तो जो मिल रहा है यह भी नहीं मिलेगा न।"

न समाज उन्हें सुरक्षा और उम्मीद का बेहतर वातावरण दे पा रहा है और न ही सरकार अपने होने का अहसास करा पा रही है। बच्चों के सामने आई चुनौतियों और असुरक्षा के माहौल में उन्हें अगर कहीं भी न्याय मिलने की उम्मीद है तो शायद शिक्षक और स्कूल दिखाई देता है। जहाँ उन्हें गाइडेंस मिल सके कि राशन के लिए किसके पास जाएँ? क्या आवेदन लेकर जाया जा सकता है? इसके अलावा, शिक्षक उनकी समस्या सुनकर गाँव के सरपंच को बुलाकर या पास के थाने से पुलिस को बुलाकर कुछ मदद कर सकते हैं। कुछ नहीं तो प्यार से दो बातें करके दिलासा दे सकते हैं कि जल्दी ही सब ठीक होगा।

माध्यमिक स्कूल में सामाजिक विज्ञान के समाजशास्त्रीय पहलुओं को देखना और समझना, इसके प्रायोगिक महत्त्व को स्थान देना बहुत ज़रूरी है। पाठ्यपुस्तक में दिए गए सैद्धान्तिक पहलुओं को बस बता देना सामाजिक विज्ञान शिक्षण नहीं कहा जा सकता। एक शिक्षक की भूमिका है कि वह बच्चों को आज की स्थिति से अवगत कराते हुए पाठ्यक्रम में उल्लेखित सैद्धान्तिक पहलुओं पर रोशनी डाले। शायद मृत बनाए गए सामाजिक विज्ञान को इसी प्रकार जीवन्त बनाया जा सके। मुझे लगता है इसी तरह से सही मायने में बच्चे आलोचनात्मक चिन्तन, विवेचना और विश्लेषण से गुज़र सकेंगे। बच्चे भी देख सकें कि शिक्षण के दौरान समाज और राष्ट्र के लिए जिस ज़िम्मेदार नागरिक को गढ़ने की बात की जाती है वह ज़िम्मेदार नागरिक है कौन? यह समझ सकें कि शब्दों में ज़िम्मेदार नागरिक और पारस्परिक समाज नहीं ढाला जा सकता। बच्चों के उदाहरण के लिए ही कोई ज़िम्मेदार नागरिक और परस्पर सम्बन्धों वाला समाज कहीं दिखना भी तो चाहिए।

ऐसे में ही उन्हें केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सरकार की ज़िम्मेदारी वाले स्वास्थ्य और शिक्षा के कार्य और दायित्व, न्यूनतम मज़दूरी, समाज के आपसी सम्बन्ध, साहूकार के ब्याज की राशि, पुलिस के पहरे, हिंसा आदि की अवधारणाएँ समझाई और उनकी नज़र से समझी जा सकती हैं। इस साल बच्चों की बातों को सुनना एवं समझना और उसी आधार पर उनके इस बार के प्रश्नपत्रों को तैयार करना फिर उनके अनुभवों के आधार पर आकलन ही सही मायने में पढ़ाई होगी।

अगर हम अक्षर ज्ञान और पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को थोड़ा किनारे कर इन बच्चों के मन-मस्तिष्क में बैठे शब्दों और अनुभवों को बाहर आने का मौक़ा दें। देखें कि बच्चों के अनुभव क्या आकार ले रहे हैं? भारी-भरकम अवधारणात्मक शब्दों और उनकी परिभाषाओं को सिखाने से पहले उन्हें अभिव्यक्ति का मौक़ा दें। अभिव्यक्ति में अधिकार और उनके न्यायिक मूल्यों को संरक्षित करने का बीड़ा भी उठाएँ। यह चर्चा करें कि सैद्धान्तिक और व्यवहारिकता में क्या अन्तर है? तो हम सामाजिक विज्ञान शिक्षण को कुछ अर्थपूर्ण बना सकेंगे। समता, बन्धुत्व, सामाजिक पारस्परिकता, लोक कल्याणकारी राज्य, व्यक्ति की गरिमा, जीवन का अधिकार, यही सब सामाजिक विज्ञान का विषयक्षेत्र

है। इस दौर में भी बच्चों की शिक्षा, शिक्षण पद्धतियों, कक्षा में हुई चर्चाओं और जीवन से किताब के जुड़ावों और उसके अनुभवों का दस्तावेज़ बनाया जाना चाहिए। तभी समझा जा सकेगा कि सामाजिक विज्ञान का चेहरा-मोहरा कैसा दिखता है।

सन्दर्भ :

1. *एनसीएफ़ 2005*, एनसीईआरटी, नई दिल्ली
2. *सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र 2005*, एनसीईआरटी, नई दिल्ली
3. *हमारे अतीत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन* और भूगोल की पाठ्यपुस्तकें, कक्षा 6, 7 एवं 8, 2006, एनसीईआरटी।

अंजना त्रिवेदी विगत ढाई दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए सतत लेखन रहा है। महिला स्वास्थ्य, शिक्षा एवं नागरिक अधिकार इनके प्रमुख विषय रहे हैं। अंजना वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्यप्रदेश में सामाजिक विज्ञान स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : anjana.trivedi@azimpremjifoundation.org

आरम्भिक भाषा शिक्षण
बातचीत एवं चित्रों की उपयोगिता

हुमा नाज़ सिद्दीकी

आरम्भिक भाषा शिक्षण के तहत बच्चों के मौखिक भाषा विकास एवं अभिव्यक्ति को सुनिश्चित करना कक्षा-शिक्षण प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा होता है। बच्चों द्वारा यह महसूस करना कि वे कक्षा में अपनी बात रख सकते हैं, उन्हें कक्षा से, अपने साथियों और शिक्षक से जुड़ने का एहसास कराता है जो साथ-साथ सीखने और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यह लेख पहली व दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ इस सन्दर्भ में किए गए काम के कुछ उदाहरणों को विस्तार से रखता है। सं.

अकसर बच्चों की क्षमताओं और उनके पूर्व अनुभवों को कमतर आँका जाता है, इन्हें कक्षा-शिक्षण प्रक्रियाओं में उतना स्थान नहीं दिया जाता। हम जानते हैं कि विद्यालय आने से पहले ही कम-से-कम एक भाषा पर बच्चे का अच्छा नियंत्रण होता है, एवं उस भाषा की एक स्तर की समझ भी होती है। कृष्ण कुमार अपनी किताब *बच्चे की भाषा और अध्यापक* में कहते हैं कि "दुनिया का हर बच्चा, चाहे उसकी मातृभाषा कोई भी हो, भाषा का इस्तेमाल तुरन्त कुछ उद्देश्यों के लिए करता है। एक बड़ा उद्देश्य है दुनिया को समझना जिसकी प्राप्ति के लिए भाषा एक बेहतरीन औज़ार का काम करती है। पूर्व अनुभवों की व्याख्या करने और उन्हें पुनर्व्यवस्थित करने का काम भाषा के माध्यम से ही सम्भव है।" बच्चा शैशवावस्था से ही भाषा को एक पूरे सन्दर्भ में सुन व समझ रहा होता है इसलिए भाषा शिक्षण की शुरुआत में यह ज़रूरी होता है कि बच्चों की अपनी भाषा, उनके अनुभवों को ध्यान में रखकर भाषा शिक्षण शुरू किया जाए।

इस लेख में उल्लेखित कार्य का उद्देश्य आरम्भिक भाषा शिक्षण के तहत बच्चों के सीखने की चुनौतियों को समझना, और कविताओं एवं चित्रों के माध्यम से मौखिक भाषा के विकास को समझना है। यह कार्य बेमेतरा ज़िले की एक शासकीय प्राथमिक शाला में पहली व दूसरी कक्षा के 21 बच्चों के साथ किया गया। इस काम के दौरान कक्षा पहली की पाठ्यपुस्तक के अलावा बाल साहित्य की कुछ किताबों, कविता चार्ट, कविता पट्टियों का इस्तेमाल किया गया।

भाषा सीखने-सिखाने की चुनौतियों को समझना

कई बार यह शिकायत होती है कि दूसरी कक्षा के अन्त तक भी बच्चे पढ़ नहीं पाते, बोलते नहीं हैं, बच्चों को कुछ नहीं आता, आदि। स्कूल में शिक्षक साथियों के साथ भाषा शिक्षण पर कार्य करने के दौरान भी बताया जाता है कि कुछ बच्चे बोलते ही नहीं हैं, अपनी बात कहने से कतराते हैं। इन चुनौतियों को समझने के लिए शुरुआत कक्षा-शिक्षण के अवलोकन से हुई और फिर बच्चों से सामान्य बातचीत भी की गई, जैसे– उनके घर, परिवार, गाँव के बारे में जानना आदि। जैसा कि ऊपर कहा गया है सीखने-सिखाने का यह काम कक्षा एक व कक्षा दो के मिश्रित समूह के साथ किया गया। कक्षा-शिक्षण अवलोकन के दौरान शिक्षण प्रक्रिया के कुछ उदाहरण इस प्रकार रहे :

उदाहरण 1. कक्षा में बच्चों को वर्णों के बारे में पढ़ाया जा रहा था। शिक्षिका ने कुछ वर्णों को ब्लैकबोर्ड में लिखा और उन्हें पढ़कर बच्चों को बताने लगीं। शिक्षिका ने लिखा– ख, र, क, म...। खरगोश का 'ख', रस्सी का 'र', कलम का 'क', मछली का 'म'। इस प्रकार इन वर्णों को पढ़ाने के बाद शिक्षिका ने बच्चों से पूछा भी और बच्चे सीखे या नहीं, यह आकलन करना चाहा। कुछ बच्चों ने वर्णों को पहचाना तो कुछ ने नहीं। जिन बच्चों ने नहीं पहचाना उन्होंने दूसरे बच्चों की हाँ में हाँ मिलाते उनकी राह पकड़ ली। पढ़ने-पढ़ाने का ये दौर इसी प्रकार कुछ और वर्णों के साथ भी चला।

उदाहरण 2. शिक्षिका दो अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना बता रही थीं। जैसे– आ + म = आम, ला + ल = लाल। शिक्षिका ने बच्चों को नए बने शब्दों को कॉपी में लिखने को कहा। साथ ही वे एक स्टिक से अक्षरों को दोहराकर बच्चों को बता रही थीं। कुछ बच्चे ही अक्षरों को पहचान पा रहे थे। शिक्षिका के दोहराने से कुछ बच्चे अक्षरों की ध्वनियों को जोड़कर नया शब्द बोल पा रहे थे। शिक्षिका ने सभी अक्षरों को दोहराकर पढ़वाया फिर बच्चों से भी आकर पढ़ने को कहा। कक्षा दूसरी के ज़्यादातर बच्चे अक्षरों को पहचानकर पढ़ पा रहे थे पर पढ़ना उसी तरह था– आम का 'आ' और मछली का 'म', आम। कक्षा पहली का कोई भी बच्चा सम्पूर्ण रूप से पढ़ने एवं कहने में असमर्थ था, इसीलिए बच्चे शायद खुलकर अभिव्यक्त भी नहीं कर रहे थे।

उदाहरण 3. सभी बच्चों के लिखने-पढ़ने की दक्षता पर भी शिक्षिका से चर्चा हुई। शिक्षिका का कहना था दूसरी के सभी 13 बच्चे पढ़ और लिख लेते हैं जबकि पहली के एक-दो बच्चे ही अपना नाम लिख और पढ़ पाते हैं। शिक्षिका ने कुछ बच्चों को बुलाकर बोर्ड पर नाम लिखने को कहा। दूसरी कक्षा के 4 बच्चों ने अपना नाम सही लिखा, मगर जब उन्हीं बच्चों को दूसरे का नाम लिखने को कहा गया तो बच्चों ने बिना कोई मात्रा लगाए अक्षरों को जोड़कर लिखने का प्रयास किया। उनका स्तर समझने के लिए हमने 'एक कहानी कहनी है' इस कविता की कुछ पंक्तियाँ बोर्ड पर लिखीं और उन्हें बच्चों को पढ़ने के लिए कहा। लगभग सभी बच्चे स्वतंत्र रूप से इस कविता को पढ़ने में असमर्थ थे, दूसरी के तीन बच्चे वाक्य के कुछ शब्द, जैसे– आम, दिन, आदि पढ़ पाए। पहली के बच्चे पढ़ने में असमर्थ थे। दो बच्चियाँ बिलकुल शान्त थीं और सामने बुलाए जाने पर झिझक रखते हुए उन्होंने न बोलने का फ़ैसला किया।

उदाहरण 4. बच्चों के सीखने में एक और चुनौती थी– उनकी अपनी भाषा। छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी बोली जाती है, यही बच्चों की परिवेशीय भाषा है। लेकिन कक्षा में सीधे हिन्दी भाषा से परिचित कराया जा रहा था। कक्षा अवलोकन के दौरान यह बात भी समझ में आई कि हिन्दी भाषा के कुछ शब्द जो बच्चों को बताए जा रहे होते हैं उनकी अपनी भाषा या फिर बोलचाल की भाषा में बच्चे उनसे अलग बोल रहे होते हैं, जैसे– आम को आमा, लड़की को टुरी या नोनी, तालाब को तरिया आदि (छत्तीसगढ़ी भाषा)। यह भी एक वजह है कि बहुत-से बच्चे अपनी बात खुलकर नहीं रख पाते भले ही वह अपनी भाषा व परिवेश में स्वतंत्र रूप से बोल व सुन रहे होते हैं।

अवलोकन के बाद कक्षा प्रक्रियाओं के अवलोकन के आधार पर मैंने शिक्षिका से बातचीत की। इसमें भाषा शिक्षण के तरीक़े और उन तरीक़ों से सम्बन्धित चुनौतियों व कुछ ख़ास सवालों, जैसे– बच्चों की कक्षा में मौखिक अभिव्यक्ति कितनी है? बच्चे क्या सुनी गई बातों पर स्वतंत्र रूप से अपनी बात कह पाते हैं? कक्षा में बच्चों को छत्तीसगढ़ी भाषा में कहने सुनने के कितने मौक़े उपलब्ध हैं? बच्चों के मौखिक भाषा विकास के लिए क्या शिक्षण प्रक्रियाएँ हो सकती हैं?, आदि पर चर्चा की गई।

उपरोक्त उदाहरणों का सन्दर्भ रखते हुए हमने 20 दिन की एक कार्य योजना बनाई।

इस योजना में शिक्षण हेतु बच्चों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए बातचीत, बच्चों के अपने अनुभवों को साझा करना, विभिन्न कविताओं को पहले सन्दर्भ और फिर कविता पोस्टर के साथ पढ़ना, कहानी सुनना, किताबों, चित्रों पर राय देना शामिल किया गया।

कार्य की शुरुआत एवं कक्षा में बातचीत

कक्षा में सभी बच्चों की भागीदारी एवं अभिव्यक्ति को सुनिश्चित करने के लिए पहला काम बच्चों को बातचीत के मौक़े उपलब्ध कराने पर किया गया। 20 दिन में पहला हफ़्ता कक्षा में बच्चों के साथ सिर्फ़ बातचीत का रखा गया। इसमें बच्चों को सुनी या देखी गई बातों या



चित्र 1 : बाल साहित्य की किताबों और चित्रों पर बात



चित्र 2 : बाल साहित्य की किताबों और चित्रों पर बात

घटनाओं को व्यक्त करना, अपने घर, परिवार, स्कूल और परिवेश के बारे में बताना था। सभी बच्चों को अलग-अलग विषयों के तहत (तालिका 1) सबके सामने अपनी बात रखनी थी साथ ही उससे जुड़े अपने निजी अनुभव साझा करने थे।



चित्र 3 : बातचीत एवं अनुभवों को साझा करना

बातचीत का हफ़्ता

ऐसा नहीं था कि सभी बच्चे झट-पट बोलने लगे। कुछ बच्चे जो पहले से बोलते थे शुरुआत उनके साथ ही हुई जिससे अन्य बच्चों ने धीरे-धीरे सामने आकर अपनी बात रखना शुरू किया। उनसे कुछ मन से करने को कहा तो जैसा अमूमन होता है वे झिझकते हैं मगर धीरे-धीरे बच्चे खुले। तुमको क्या पसन्द है तो बच्चों ने कहा गाना गाना। हमने पहले उनसे गाना गाने को ही कहा। बच्चों ने हिन्दी, छत्तीसगढ़ी फ़िल्मों के गाने सुनाए, कुछ सुवा

तालिका 1 : बातचीत के विषय एवं बच्चों की उपस्थिति

दिन	बातचीत का विषय	उपस्थिति
पहला	अपने बारे में बताना	18
दूसरा	त्योहार पर बातचीत	19
तीसरा	मनपसन्द खेल	17
चौथा	अगर हम उड़ पाते?	20
पाँचवाँ	किताबों के चित्रों पर बातचीत	20
छठवाँ	चित्रों पर बातचीत	19

गीत जैसे पारम्परिक गीत भी सुनाए। हमारा ऐसा करना बच्चों को बिना झिझक खुलकर अभिव्यक्त करने में मददगार तो रहा ही, साथ ही उन्हें मज़ा भी आया और उनमें आत्मविश्वास भी जागा। इस गतिविधि ने बच्चों को बाद में बाक़ी अन्य विषयों पर भी बोलने में मदद की, जैसे– बच्चों ने पोला, हरेली जैसे परिवेशीय त्योहारों एवं बाल साहित्य की किताबों के चित्रों के आधार पर अन्दाज़े से कहानियाँ भी सुनाईं। इस पूरी प्रक्रिया में यह देखा गया कि बच्चे धीरे ही सही, मगर कुछ समय बाद अपने विचार रख रहे थे। बच्चे भले ही पढ़ना नहीं जानते थे किन्तु मौखिक रूप से अपनी बात कह रहे थे, एक दूसरे के साथ विचार साझा कर रहे थे जो भाषा शिक्षण का एक अहम उद्‌देश्य है।

चित्र बनाना एवं अभिव्यक्त करना

बातचीत के हफ़्ते के बाद अब बच्चों को उनकी ही मौखिक भाषा के लिखित स्वरूप से अवगत कराने पर कार्य किया गया जिसके लिए लगभग पन्द्रह दिनों की कार्य योजना शिक्षिका से साझा की गई, शुरुआत के दो से तीन दिन उन्हें मनपसन्द चित्र बनाने को कहा गया, बच्चों के चित्र बहुत कुछ कहते हैं और बच्चे ख़ुद भी चित्रों को पढ़ते हैं एवं उसके अनुरूप अपने विचार गढ़ते हैं। यह कार्य बच्चों को समझाने में मददगार था कि उनके विचारों को काग़ज़ में चित्रों के माध्यम से दूसरों को बताया भी जा सकता है, जैसे– बच्चों ने बातचीत के दौरान अपने-अपने गाँव के बारे में बताया और चित्रों के माध्यम से भी व्यक्त किया।

बच्चों को अपने मन मुताबिक़ चित्र बनाने की पूरी स्वतंत्रता दी गई। शुरुआत में उन्हें कुछ सुझाव दिए गए कि अपने गाँव से सम्बन्धित किसी भी चीज़, घटना या वह कुछ बनाएँ जो तुम्हारा मन करे। इस तरह पहले दिन बच्चों ने अपने गाँव, दूसरे दिन अपनी मनपसन्द कहानी का चित्र बनाकर उसे सबके साथ साझा किया। दोनों ही दिन कक्षा के सभी बच्चे उपस्थित रहे। यह बात समझना ज़रूरी है कि ऐसे किसी



चित्र 4 : अनुभव एवं कहानी आधारित चित्र बनाना

भी कार्य को बच्चों के साथ करने के लिए उन्हें अपनत्व के साथ प्रोत्साहित करने की आवश्यकता सबसे अहम है। शुरुआत में कई बच्चे कहते हैं, हम चित्र नहीं बना पाएँगे या फिर हमें आता नहीं। इसका मूल कारण, जो मुझे लगता है, उनकी कलाकृतियों को वयस्कों की समझ के पैमाने से देखा जाना है जिसे बच्चे भली-भाँति महसूस करते हैं। इस विचार का बनना ही बच्चों में उनसे बड़ों की तुलना होने या उनके समक्ष हास्य का पात्र बनने जैसी मानसिकता को पैदा करता है और बच्चे खुलकर अभिव्यक्त करने में संकोच करने लगते हैं। लेकिन बच्चों को प्रोत्साहित किया जाए तो वे भी कोशिश करते हैं। बच्चों को स्वतंत्र रूप से अपनी कलाकृतियाँ रखने को कहा गया और शिक्षिका व मैंने ख़ुद भी भागीदारी की और अपने बनाए चित्रों को बच्चों के साथ साझा किया। (चित्र 4, 5)

कविता सुनाना, गाना और कविता चार्ट के साथ काम

सबसे पहले उनकी स्थानीय कविताओं को हाव-भाव के साथ गाया गया। बच्चों ने स्थानीय गीत सुनाए। मौखिक रूप से कविताओं को बोलने के बाद कविताओं के लिखित स्वरूप से परिचित कराया गया। हाव-भाव के साथ कविताएँ सुनाने, पोस्टर से बच्चों को कविता पढ़ाने एवं ध्वनियों और शब्दों का तालमेल बताने का कार्य करने के बाद बच्चों को ख़ुद पोस्टर से पढ़ने के लिए कहा गया। चित्रों के बाद बच्चों

को भाषा की संरचना यानी मौखिक भाषा के लिखित रूप से अवगत करने का काम किया गया जिसमें लगभग सप्ताहभर कविता चार्ट



चित्र 5 : अपने बनाए चित्रों को अभिव्यक्त करते बच्चे

पठन, कविताओं में आए मिलते-जुलते शब्दों पर काम, कविता में आने वाले समान शब्दों की पहचान पर कार्य हुआ। जब बच्चे कविता चार्ट के माध्यम से अन्दाज़ा लगाकर पढ़ पा रहे थे उसके बाद अगला कार्य तीन से चार दिन कविता पट्टी के साथ किया गया जिससे बच्चे स्वयं पढ़ी जा रही कविताओं की वाक्य संरचना को समझ सकें एवं शब्दों, उनकी लिखावट और अर्थ को जोड़कर पढ़ना कर सकें। (चित्र 7, 8)



चित्र 6 : बच्चों द्वारा स्थानीय गीत–कविता सुनाना



चित्र 7 : वाक्यों को समझकर क्रम से जमाना व शब्दों की पहचान करना

बच्चों का सीखना एवं कार्य का विश्लेषण

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण था सीखने-सिखाने के विभिन्न अवसरों के साथ बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को समझना।

शिक्षण प्रक्रिया में थोड़े-से बदलाव, जैसे– पाठ्यपुस्तक के साथ अन्य बाल साहित्य को शामिल करने, बच्चों को उनके निजी एवं परिवेश से जुड़े अनुभवों को साझा करने व स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मौक़े देने से सभी बच्चों ने अपनी भागीदारी दी और विषयों पर अपनी बात साझा की। शुरुआत में कुछ बच्चे नहीं बोले, लेकिन अन्य बच्चों को देखकर कुछ दिनों बाद उन्होंने अपने अनुभव भी साझा किए। इसी तरह चित्र बनाने को लेकर शुरू में कुछ बच्चों ने इंकार किया। चित्र बनाने को लेकर उनपर दबाव नहीं डाला गया, लेकिन दूसरे बच्चों की देखा-देखी अगले ही दिन उन बच्चों ने भी चित्र बनाए। शिक्षिका से इसपर भी बात हुई कि बच्चों को कभी-कभी स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए किन्तु उन्हें प्रक्रिया से बाहर नहीं रखना चाहिए। बच्चे कुछ देर से ही सही, अन्य बच्चों को देखकर भी भाग लेना शुरू कर देते हैं। सभी बच्चों ने विभिन्न चित्र बनाए एवं अपनी प्रतिक्रियाएँ भी साझा कीं। बच्चों के चित्र शायद उस नज़रिए से सटीक न बैठें जिससे वयस्क उन्हें देखते हैं,

लेकिन उनके सभी चित्रों के मायने एवं उनसे जुड़े अपने अनुभव थे। टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों का भी सार्थक अर्थ था जिसे स्वतंत्र रूप से साझा करने के प्रोत्साहन से प्रत्येक बच्चे ने खुलकर अपने विचार अभिव्यक्त किए। बच्चों की अभिव्यक्ति धीरे-धीरे ही बढ़ी।



चित्र 8 : अनुमान लगाकर पढ़ना

बातचीत और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मौक़ों ने बच्चों के आत्मविश्वास के साथ ही अभिव्यक्ति का स्तर भी बढ़ाया, जैसे— एक कहानी को चित्र के माध्यम से व्यक्त करना, कक्षा दूसरी के एक बच्चे ने ख़रगोश और कछुए की कहानी को रोचक चित्र के माध्यम से दर्शाया तो कुछ ने किताबों के चित्र के माध्यम से पूरी कहानी बनाई। (चित्र 3, 5)

कविताओं को पोस्टर के माध्यम से आगे आकर पढ़ने में भी जो बच्चे पहले झिझक रहे थे उन्होंने धीरे-धीरे सामने आकर पढ़ने की कोशिश की। हाँ, सभी बच्चे पूरी तरह समझकर पढ़ पाने में अभी असमर्थ थे मगर भाग लेकर सभी बच्चों ने जो शुरुआत की वो अहम थी। बच्चे अनुमान से पढ़ना शुरू कर रहे थे। कुछ शब्दों और उनकी लिखावट, अक्षर और ध्वनि को पहचान पा रहे थे, जैसे— टहनी, आम, टोकरी। बच्चे बोलने के साथ पढ़ने में वाक्यों के क्रम, शब्दों की पहचान कर पा रहे थे। शिक्षिका से बच्चों के इस तरह सीखने पर बात हुई कि शिक्षण में बातचीत करने जैसी गतिविधि शामिल करने से सभी बच्चों को अपनी बात कहने का मौक़ा मिलता है। शिक्षिका ने माना भी कि बातचीत और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मौक़ों ने कक्षा के सभी बच्चों को भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

शिक्षण का सार्थक होना

अगर आप सम्पूर्ण प्रक्रिया को देखें तो यह कोई अलग या अनूठी प्रक्रिया नहीं थी। बस हम जो तरीक़े अपनाते हैं शिक्षण के उन्हीं तरीक़ों को बच्चों के लिए सहज करते हुए पहले उन्हें अपनी बात कहने, अनुभवों को रखने के मौक़े उपलब्ध कराए गए जो किसी भी कक्षा में बच्चों की मौखिक भाषा विकास में कारगर हैं। भाषा हम सभी के लिए अपने विचारों को व्यक्त करने का एक सहज माध्यम होता है। एक बच्चा सबसे पहले अपनी परिवेशीय भाषा बोलना शुरू करता है इसलिए शिक्षण प्रक्रिया में बातचीत एवं उसके अपने अनुभवों को साझा करने को स्थान दिया जाना चाहिए। उल्लेखित शिक्षण प्रक्रियाएँ बच्चों को सीखने के मौक़े देने एवं समझ के साथ सीखने में कारगर थीं। बातचीत, जिसे सामान्य प्रक्रिया मान लिया जाता है, कक्षा में सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करने का एक बेहतर माध्यम हो सकती है जिसके द्वारा सीखने और सीखी हुई बातों को सुदृढ़ बनाने का काम बहुत अच्छे से किया जा सकता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि हमारी प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों से खुलेपन से बातचीत करना या बच्चों को बातचीत का माहौल देना बहुत ही कम दिखाई पड़ता है। ऐसे में बच्चे का अपना भाषा ज्ञान एक नई भाषा में उसके प्रवेश को कैसे सुगम बना सकता है, इस ओर ध्यान नहीं दिए जाने से उसे नई भाषा सीखने में मातृभाषा के प्रयोग का अवसर नहीं मिलता और सीखने की प्रक्रिया ज़्यादा जटिल हो जाती है। जैसा आप देख सकते हैं, बच्चों को आरम्भिक स्तर पर बेहतर समझाने और अभिव्यक्ति के लिए बातचीत के साथ चित्र एक बड़ा माध्यम होता है। चित्रों के

माध्यम से बच्चे शब्दों और पूर्ण वाक्यों में अपनी बात रखते हैं। बच्चों के सीखने को देखते हुए यह कहना सार्थक है कि आरम्भिक स्तर पर उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति के ज़्यादा-से-ज़्यादा मौक़े दिए जाएँ तो कक्षा में सभी बच्चों की भागीदारी, उनका खुलकर अपनी बात रखना, चर्चा में अनुभव साझा करना, आदि सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे शिक्षिका की यह भ्रान्ति भी दूर हुई कि कुछ बच्चे कमज़ोर होते हैं इसलिए नहीं बोलते। दोष असल में बच्चों का नहीं होता, उनको दिए जा रहे अवसरों की कमी और हमारी ख़ुद की शिक्षण प्रक्रिया इसके लिए कहीं ज़्यादा ज़िम्मेदार है जिसमें आमूलचूल बदलाव और एक बेहतर प्रयास प्रत्येक बच्चे को सीखने और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

सभी चित्र : हुमा नाज़ सिद्दीकी

हुमा नाज़ सिद्दीकी सात सालों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं। आपने रुंगटा कॉलेज ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, भिलाई में सहायक प्रोफ़ेसर के रूप में विद्यार्थियों को बायोटेक्नोलॉजी पढ़ाया है। विज्ञान लेख लिखती हैं और कई शोध पत्र भी लिखे हैं। तीन साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में विज्ञान, भाषा और गणित विषय में काम कर रही हैं।

सम्पर्क : huma.siddiqui@azimpremjifoundation.org

बच्चों की भाषा के सम्मान के मायने : एक अनुभव

द्रोण साहू

कक्षा पहली के बच्चे के साथ हुआ अपना एक अनुभव रखते हुए लेखक बताते हैं कि बच्चों की भाषा का सम्मान करने के असल मायने क्या हैं? यह बड़ा सवाल भी वे उठाते हैं कि सामाजिक-सांस्कृतिक विकास और कक्षा में सीखना-सिखाना, इन दोनों के अन्तर्सम्बन्ध को कैसे देखा जाए? सं.

हम अकसर यह बात करते रहते हैं कि बच्चों की भाषा का कक्षा में प्रयोग किया जाना चाहिए या उनकी भाषा को कक्षा में सम्मान के साथ स्थान दिया जाना चाहिए। हम अकसर इन वाक्यों का प्रयोग भी करते हैं। और यह मानकर चलते हैं कि हम इनके अर्थ अच्छे से समझते हैं। लेकिन कक्षा, स्कूल, यहाँ तक कि अन्य जगहों व अवसरों पर किए गए अपने क्रियाकलापों पर हम गहरी नज़र डालें तो पाते हैं कि अकसर हमारी यह समझ अधूरी होती है। हम इन वाक्यों को सुनकर सराहते हैं लेकिन न तो पूरी तरह से इन्हें समझते हैं और न ही इनके निहितार्थों को समझ पाते हैं। कि ऐसा क्यों कहा जाता है? इसकी क्या ज़रूरत है? और एक स्कूल, कक्षा व इसकी प्रक्रियाओं से यह कैसे जुड़ता है? ऐसा ही शायद मेरे साथ भी था। कक्षा में हुए एक वाक़ये ने मुझे यह समझने में मदद की कि बच्चों की भाषा को सम्मान देने के असल मायने क्या हैं? बच्चों को समझने के मायने क्या हैं और कुछ सिखाने के भी। वह कहते हैं न कि, 'जाके पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई'।

इस संक्षिप्त लेख के ज़रिए मैं इस वाक़ये का अनुभव आपके साथ साझा कर रहा हूँ। यह बात 2019 की है। उस सत्र में मेरी पहली कक्षा में पृथ्वी नाम का एक बच्चा आया था। वह कक्षा में अकसर चुपचाप रहा करता था। किसी बात पर बार-बार बोलने के लिए प्रेरित करने पर भी केवल 'हाँ' या 'ना' में जवाब दे देता या फिर सिर हिलाकर 'हाँ' या 'ना' का इशारा भर कर देता था। हाँ, केवल हाज़िरी लेते वक़्त वह बड़े ज़ोर से चहक कर 'यस सर' ज़रूर बोलता था। जब मैं अन्य बच्चों से पृथ्वी की चुप्पी बारे में पूछता तो वे बोलते, "सर, ओहर तो हमर करा मस्त गोठियाथे अउ अब्बड़ आने-आने गाली घलो बकथे।" इसका हिन्दी में अर्थ है– सर, वह तो हमारे साथ बहुत अच्छे से बात करता है और अलग-अलग गालियाँ भी देता है।

कक्षा में मैंने एक परिपाटी विकसित की है कि जो बच्चा किसी दिन स्कूल नहीं आएगा वह अगले दिन हाज़िरी के वक़्त सामने आकर पिछले दिन न आने का कारण हिन्दी में बताएगा। इसके पीछे मेरा तर्क यह था कि मैं इसके माध्यम से





बच्चों को हिन्दी बोलने के अधिक-से-अधिक अवसर दे रहा हूँ, जिससे वे हिन्दी बोलना जल्दी-से-जल्दी सीख लेंगे।

एक दिन पृथ्वी स्कूल नहीं आया था। उसके अगले दिन वह हाज़िरी के वक़्त मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने उससे सवाल किया (जैसा कि मैं अन्य बच्चों से भी करता हूँ), "पृथ्वी, कल तुम पढ़ने क्यों नहीं आए थे?" वह कुछ देर चुप रहा, फिर बड़ी मुश्किल से उसने कुछ कहने की कोशिश की, "मोमा... गाँव... नहीं... मामा... घग्घर।" "तुम मामा के घर क्यों गए थे?" मैंने तुरन्त दूसरा सवाल दाग़ दिया। पर इस बार उसने कुछ बोलने की कोशिश भी नहीं की। इसके बाद मैंने उसके साथ-साथ पूरी कक्षा को मामा के घर जाने से लेकर स्कूल आने तक की सारी गतिविधियों पर 10 से 15 मिनट का एक लेक्चर तक हिन्दी में दे डाला। जब मेरा लेक्चर ख़त्म हुआ तो पृथ्वी की चुप्पी हिचकियों में बदल गई। मैं कुछ समझ पाता उससे पहले एक बच्चे ने (जिसे थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती थी) मुझसे कहा, "सर, इसके मम्मी-पापा और इसके घरवाले ट्रैक्टर में उसके मामा घर काम भात (मृत्युभोज) खाने जा रहे थे। ये 'नहीं जाऊँगा' बोल रहा था तो इसको पीटते-पीटते बरकसी (जबरन) बिठाकर ले गए।" मैं थोड़ी देर सन्न खड़ा रह गया। मुझे महसूस हुआ कि यदि मैं इस बच्चे से शुरू से ही उसकी मातृभाषा, छत्तीसगढ़ी में बात कर रहा होता तो वह आज अपनी परेशानी या मन की बात स्पष्ट रूप से बता सकता था। उसी समय मेरे दिमाग़ में यह बात भी कौंध गई कि किस कारण से वह मेरी कक्षा में चुप बैठता था, जबकि वह अपने दोस्तों के साथ ख़ूब बातें करता था। इस घटना ने मुझे यह भी सोचने पर मजबूर कर दिया कि बच्चे की एक दिन की कक्षा या फिर उसका सामाजिक-सांस्कृतिक विकास? दोनों में अधिक महत्त्वपूर्ण क्या? और भी ऐसे कई मुद्दे। ख़ैर! इस घटना के बाद मैंने यह ठान लिया कि अब मैं उन्हें उनकी भाषा में बोलने की पूरी आज़ादी दूँगा।



सभी चित्र : द्रोण साहू

द्रोण साहू शासकीय प्राथमिक शाला बिजेमाल, महासमुंद, छत्तीसगढ़ में 15 वर्षों से पढ़ा रहे हैं। वे हिन्दी, अँग्रेज़ी और शिक्षा में स्नातकोत्तर हैं। इनकी कक्षाओं में दो भाषा समुदाय से बच्चे आते हैं, जिनके साथ वे काम करना पसन्द करते हैं। शौक़िया शिक्षा पर कविताएँ भी लिखते हैं।

सम्पर्क : drdron2005@gmail.com

पद्य पाठ : बातचीत से भाषाई कौशल की ओर

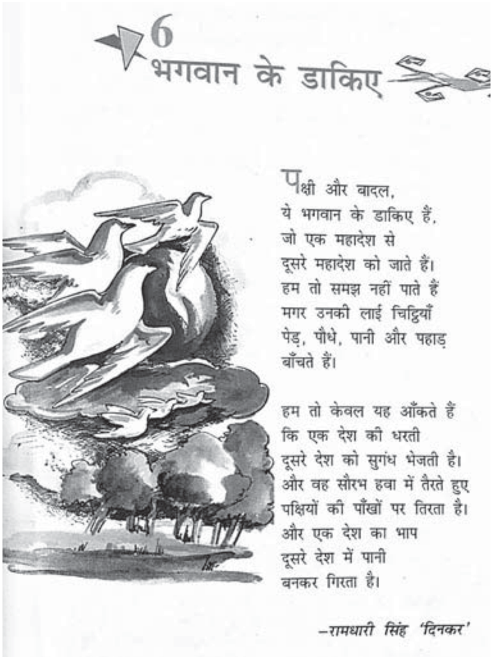
अनीता चमोली

भाषा शिक्षण के दौरान कविता-गीत पढ़ने-पढ़ाने का मक़सद अपने भावों, विचारों, अनुभूतियों और तथ्यों से जुड़ने व व्यक्त करने के अवसर जुटाना भी है जिसे बच्चे अपने रोज़मर्रा के अनुभवों से अर्जित करते हैं। उच्च प्राथमिक कक्षाओं में कविता पढ़ाने के प्रचलित तरीक़ों और उनकी सीमाओं का ज़िक्र करते हुए लेखिका ने कुछ सार्थक बातचीत-आधारित ऐसी प्रक्रियाओं का वर्णन किया है जिनसे बच्चे अनौपचारिक व आनन्दपूर्ण वातावरण में प्रकृति, परिवेश व परिस्थितियों से जुड़ सकें। वे खुलकर अपने विचार व्यक्त कर सकें और उनमें भाषाई कौशलों का सहज विकास हो सके। सं.

कविता और गीत को लयबद्ध तरीक़े से कक्षा में प्रस्तुत करना ही पढ़ना-पढ़ाना है। पद्य पाठ की एक-एक पंक्ति का अर्थ बताना, अर्थ को विस्तार देना, अन्त में प्रश्न-अभ्यास कराकर और पद्याधारित मौखिक-लिखित सवाल-जवाब कर लिया जाए तो यह बेहतर और आदर्श शिक्षण माना जाता है। मुझे भी प्रायः ऐसा ही लगता था। पिछले चौदह साल के अधिकांश शिक्षण अनुभव भी इसी पद्धति के साथ व्यतीत हुए।

कोरोना काल में भाषा सम्बन्धी ऑनलाइन सेमिनारों ने अलग-अलग नज़रियों से परिचित कराया। स्कूल खुल जाने के बाद इनमें से कुछ को अपनाते हुए शिक्षण करने का मन बना। आठ फरवरी 2021 से माध्यमिक स्तर पर कक्षा छह, सात, आठ और नौ के विद्यार्थी विद्यालय आने लगे। मैंने कक्षा आठ के बारह छात्रों के साथ पद्य पाठ के पठन का आरम्भ बातचीत-आधारित तरीक़ों से किए जाने का प्रयास किया। बातचीत से भाषाई कौशलों का विकास कैसे सम्भव है? इस सवाल का जवाब पाना एक मक़सद था। साथ ही किसी पद्य पाठ को पढ़ने और पढ़ाने की पूर्व तैयारी क्या हो? यह सवाल भी केन्द्र में रहा। इस पूरी प्रक्रिया में ख़ास बातें निम्नवत रहीं।

'भगवान के डाकिए' *वसंत* पुस्तक भाग-3, कक्षा-8 में रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता छठे पाठ के तौर पर चयनित है। कविता के साथ उसी पृष्ठ में एक चित्र भी है। बातचीत के लिए चित्र से ही प्रारम्भ किया जाना उचित लगा। बच्चों से कहा गया, "आइए! चित्र से बात शुरू करते हैं।" पहले-पहल छात्रों ने सोचने और बोलने में समय लिया। फिर तो बातों का सिलसिला चल पड़ा और बहुत सारी बातें सामने आईं। बातचीत में आए ख़ास बिन्दुओं को श्यामपट्ट पर लिखना अनवरत चलता रहा। शैलेन्द्र, कंचन, भारती कक्षा में बार-बार प्रोत्साहित करने के बावजूद भी ख़ामोश ही रहते रहे हैं। लेकिन, आज वे ख़ामोश नहीं रहे। बातचीत के कुछ ही अंश श्यामपट्ट पर अंकित हो पाए। छात्रों की कुछ बातों का सार निम्नवत है– 'तरह-तरह के बादल, तीन पक्षी, पेड़, पहाड़, मैदान, हरी घास, लाल बादल, सूरज, पीले पेड़, लाल-नीली पत्तियाँ, नीले, सफ़ेद और काले बादल।'


6
भगवान के डाकिए

पक्षी और बादल,
ये भगवान के डाकिए हैं,
जो एक महादेश से
दूसरे महादेश को जाते हैं।
हम तो समझ नहीं पाते हैं
मगर उनकी लाई चिट्ठियाँ
पेड़, पौधे, पानी और पहाड़
बाँचते हैं।

हम तो केवल यह आँकते हैं
कि एक देश की धरती
दूसरे देश को सुगंध भेजती है।
और वह सौरभ हवा में तैरते हुए
पक्षियों की पाँखों पर तिरता है।
और एक देश का भाप
दूसरे देश में पानी
बनकर गिरता है।

–रामधारी सिंह 'दिनकर'

बात शुरू करने से पहले मेरे मन में था कि कक्षा से प्रतिक्रियाओं में बादल, पक्षी, पेड़ ही आएँगे। लेकिन प्रतिक्रियाएँ उम्मीद से अधिक आईं। तत्काल मन में आया कि क्यों न चित्र से ही बात को विस्तार देने का प्रयास किया जाए! बातें मौखिक ही थीं। छात्रों को अपनी नोटबुक में कुछ नहीं लिखना था। वे श्यामपट्ट पर लिखी जा रही उन्हीं की प्रतिक्रियाओं को देख-पढ़ रहे थे। स्पष्ट नज़र आ रहा था कि वे रोज़मर्रा की कक्षा से अधिक सहज महसूस कर रहे हैं।

अब छात्रों से कहा गया, "एक बार फिर से चित्र को ग़ौर से देखते हैं। फिर सोचते हैं कि चित्र पर और क्या-क्या बातें की जा सकती हैं।" प्रत्येक छात्र के पास पुस्तक नहीं थी। दो-तीन के मध्य पुस्तक रखने की व्यवस्था से काम चल गया। कुछ देर कक्षा में मौन पसर गया। फिर वे चित्र पर अपने अनुभवों के आधार पर कई प्रतिक्रियाएँ देने लगे। अब कुछ इस तरह की बातें छात्रों ने रखीं।

'शाम हो चली है। पक्षी लौट रहे हैं।' 'बारिश आने वाली है। तब पक्षी अपने घोंसलों की ओर जा रहे हैं।' 'लगता है तूफ़ान आने वाला है।' 'ये विदेशी पक्षी हैं। अब वे अपने देश लौट रहे हैं।' 'जंगल में आग लगी है।' 'पक्षी अपनी जान बचाने के लिए उड़ रहे हैं।' 'जंगल कम हो रहे हैं। पक्षी परेशान हैं।' 'नदी सूख चुकी है। पक्षियों को प्यास लगी है।' 'इस धरती पर सबका हक़ है।' 'हमें पेड़-पौधे लगाने चाहिए।' 'धूल भरी आँधी से कुछ नुक़सान हो सकता है।' 'पक्षी भगवान का रूप होते हैं।' 'पक्षियों के मज़े हैं। वे कहीं भी जा सकते हैं।' 'बादल हैं तभी पृथ्वी पर जीवन है।' 'जल है तो कल है।'

इतना सूक्ष्म अवलोकन और बयान! यह हैरानी का विषय था। अब वे किसी और सवाल की प्रतीक्षा करने लगे। सो, बात आगे बढ़ाने के लिए श्यामपट्ट पर एक सवाल लिखा गया। सवाल था– आपके आसपास कौन-कौन से पक्षी हैं? जवाब में ख़ूब सारी बातें सामने आईं। श्यामपट्ट पर छोटे और बड़े पक्षियों की सूची बनाई गई। छात्रों द्वारा बोली गई बातों का सार श्यामपट्ट पर लिखा गया। विद्यार्थियों को बुदबुदाते देख अच्छा लग रहा था। वे सोचते और विचार करते। शायद वे समझना चाह रहे थे कि हम क्या बोल रहे हैं और श्यामपट्ट पर उसे कैसे लिखा जा रहा है! विद्यार्थियों ने छोटे पक्षियों में चखुली, गौरैया, घिंदुड़ी, सिंटुली, गुथनी और चकोर का नाम बताया। बड़े पक्षियों में उन्होंने कौआ, तोता, मैना, कठफोड़वा, गरुड़, बाज़, घुघती, करै, कबूतर, उल्लू, चमगादड़, जंगली कुकड़े, कोयल और बुलबुल पक्षी का नाम बताया।

छात्रों के हाव-भाव से लग रहा था कि उन्हें इस तरह का संवाद अच्छा लग रहा है। अन्य दिनों के शिक्षण में उन्हें शान्त बैठना और सारा ध्यान किताब के पाठ पर रखना होता था। लेकिन, आज तो अनौपचारिक माहौल देखकर वे बहुत कुछ बताने को आतुर थे। चकोर का नाम आते ही कंचन ने बताया, "भारती की माँ उसे चकोर कहती हैं।" पता चला कि भारती के पापा चकोर पक्षी लाए थे। करै के बारे में कंचन ने बताया, "करै एक लम्बी पूँछ वाली चिड़िया

है। यह चिड़िया साबुन भी खा लेती है।" बातें हो रही थीं। छात्र तब चुप हुए जब श्यामपट्ट पर अगला सवाल लिखा जा रहा था। सवाल था– पानी में रहने वाले जीव-जन्तु कौन-कौन से हैं? कई जवाब आए। उनकी बातचीत के कुछ अंश यह थे। हंस, बत्तख, बगुला, जलमुर्ग़ी, मछली, शंख, सीपी, कछुआ, मगरमच्छ, समुद्री घोड़ा और साँप। अब छात्र जीव-जन्तुओं की ख़ूबियाँ बताने लगे। 'मैंने देखा है।' 'तूने देखा क्या?' समुद्री घोड़ा पर वे बहस करने लगे। 'समुद्री घोड़ा कोई चार पैर का जीव है।' 'समुद्री घोड़ा केवल एक मछली का नाम है जिसका मुँह घोड़े की तरह होता है।' 'समुद्री घोड़ा एक अनोखी मछली है। यह अन्य मछलियों को खा जाती है।' 'नहीं-नहीं। वह समुद्री घास, काई खाता होगा।' 'उसके कोई चार पैर नहीं होते।'

यहाँ बहस को बदलना ठीक समझा गया। प्रायः छात्र कक्षा में इस तरह की आम बातें नहीं करते। उनका खुलापन देखकर अच्छा लगा। अब एक और सवाल श्यामपट्ट पर लिखा गया– पक्षी कहाँ रहते होंगे? कई जवाब आए। 'पेड़ों पर।' 'छज्जों पर।' 'ज़मीन में।' 'बिल के भीतर।' 'घास में।' ये बच्चों के अपने अनुभव थे। वे पेड़ों के नाम भी गिनाने लगे। एक सवाल और लिखा गया– किसने पक्षियों के घोंसले देखे हैं? जवाब में कई हाथ खड़े हुए। वर्णन विस्तार लेता चला गया। कौआ, गौरैया, छिपकली और जंगली मुर्ग़ों के अण्डों से लेकर साँप-छिपकली की बातें सुनाई देने लगीं। बच्चों की बातचीत के कुछ अंश यह हैं :

'घुघती को घोंसला बनाना नहीं आता।'

'कौए का भी घोंसला लकड़ियों को इकट्ठा करके बनाया होता है।'

'घेंदुड़ी तो हमारे घरों के आसपास रहती है।'

'घेंदुड़ी गुथनी के बने-बनाए घोंसले में कब्ज़ा कर देती है।'

'हाँ! बेचारी गुथनी फिर से अपना घोंसला बनाती है।'

'अरे दोबारा बनाने पर भी उसके घोंसले पर दूसरी घेंदुड़ी कब्ज़ा कर लेती हैं। हाँ, मैंने कई बार देखा है।'

'पता है। कई बार गुथनी को अपने बच्चे ज़मीन पर देने पड़ते हैं।'

'गुथनी का जोड़ा गीली मिट्टी ला-लाकर अपना घोंसला दीवार के कोने पर बनाता है।'

'अच्छा वो दो पूँछ वाली न, जिसे मनी बर्ड भी कहते हैं।'

'साँप भी कई बार घोंसलों में रखे अण्डों को खाने के लिए घर में आ जाते हैं।'

'वैसे, पक्षियों के अण्डों को छूना नहीं चाहिए। माँ फिर उन अण्डों को नहीं छूती। छोड़ देती है।'

'पक्षियों को दाना देना चाहिए। उनके लिए पानी भी रखना चाहिए।'

'अब तो पक्षियों के घर भी बाज़ार में मिलने लगे हैं।'

'लेकिन उन घरों में चिड़िया कहाँ अपना घर बनाती है?''

'चिड़िया घर-वर नहीं बनाती। वो तो बस अपने अण्डों को सेने के लिए यह सब करती है।'



कंचन ने कक्षा छह के पाठ 'नादान दोस्त' की याद दिलाई। कहने लगी, "बच्चों की नादानी की वजह से अण्डे टूट गए थे। याद है न?" घुघती, कौआ, बुलबुल, गौरैया, सेंटुली के अण्डे और घोंसले देखने की बात छात्रों ने बताई। अंश को छोड़कर सभी बच्चों ने किसी-न-किसी पक्षी के घोंसले और अण्डे ज़रूर देखे थे। कुछ बच्चों ने बताया कि कई घोंसलों में रंगीन अण्डे देखे हैं, लेकिन वह उन पक्षियों को नहीं पहचानते। अब बातों को विराम देने के लिए कहना नहीं पड़ रहा था। श्यामपट्ट पर लिखने वाले सवाल पर सब केन्द्रित हो जाते। पक्षी क्या-क्या खाते हैं? जवाब विविधता भरे थे। कीड़े-मकोड़ों, चावल के दाने, खेतों में पकी फ़सलों के दाने, आम, अमरूद और मक्का की बात भी आई। गेहूँ, खड़ीक के दाने, भीमल के दाने, आड़ू के साथ-साथ पके हुए सूखे भोजन की भी बात सामने आई। अंश ने बताया कि जो फल पक्षी चख लेते हैं वे बहुत मीठे होते हैं। चील और बाज़ के भोजन की बात भी सामने आई। सड़ा-गला और मरे हुए पशुओं का माँस भी पक्षियों का भोजन है। शाकाहारी-माँसाहारी जीवों के भोजन की ख़ूब बातें हुईं। उन बातों के कुछ अंश यहाँ दिए जा रहे हैं :



'गाँवों में सभी कुछ-न-कुछ काम में आ जाता है। गाय-भैंस का गोबर खाद के काम आ जाता है।'

'पतझड़ में चीड़ का पिरुल मवेशियों के गोट में बिछाने के काम आता है।'

'मक्का सुखाकर पिसवाया जाता है। पॉपकॉर्न के लिए बेचा भी जाता है।'

'मल्टीग्रेन आटा के लिए स्थानीय अनाज ख़ूब काम आता है।'

'सीधे तने वाले वृक्ष सूखी घास को सर्दियों के लिए सुरक्षित रखने के काम आते हैं।'

'इंसान पका हुआ भोजन करता है।'

'हम इंसान सबकुछ खाते हैं।'

'कुछ पक्षी आसमान से बरस रहा पानी ही पीते हैं।'

विद्यार्थियों की बातें सुनते रहने से लोक धारणाओं, प्रचलित मिथकों और लोक विश्वासों का भी पता चला। उनके अनुभव लोक मानस के साथ जुड़े होते हैं। वे उनपर भरोसा भी करते हैं। यह विचार भी मन में आया कि क्यों न कुछ सवाल उन्हें लोक विश्वासों और धारणाओं के साथ-साथ तर्क जगाने वाले भी दिए जाएँ, जैसे—

पता करो कि अब बंजर हो चुके सीढ़ीदार खेत पुरखों ने किस तरह खोदकर बनाए होंगे?

पता करो कि तुम्हारा गाँव कितना पुराना है? किसी गाँव को बसाने से पहले बुज़ुर्गों ने कौन-कौन सी चीज़ों या बातों का ख़्याल रखा होगा?

घर में बड़ों-बुज़ुर्गों से पूछो कि बारिश का अनुमान पहले कैसे लगाया जाता रहा होगा?

गाँव के जंगलों को उगाने और बनाने में पशु-पक्षियों की भूमिका क्या रहती है?

यदि पक्षी, कीट या तितलियाँ न रहें तो धरती पर इसका क्या असर होगा?

विद्यार्थियों ने बिना कहे ही अपनी उत्तरपुस्तिका में सवाल नोट कर लिए। उन्हें कहा गया कि इनके जवाब लिखकर नहीं लाने हैं। बस! इन सवालों के जवाब की पड़ताल मौखिक ही करनी है।

अब छात्रों को कविता के आसपास ले जाना ही था। कविता पाठ के चित्र को एक बार फिर से देखा गया। चित्र में दिखाई दे रहे बादलों पर बातें होने लगीं। बच्चों की ख़ूब प्रतिक्रियाएँ आईं।

'यह बारिश से पहले दिखाई देने वाले बादलों का चित्र है।'

'नहीं, बारिश नहीं आएगी। जब बादल लाल होते हैं तो मौसम खुलता है।'

'सफ़ेद बादल भी नहीं गरज़ते। वे बारिश की तैयारी करते हैं।'

'बारिश तो काले बादल दिखाई देने के बाद आती है।'

'उससे पहले बादल गड़गड़ करते हैं।'

'बिजली भी चमकती है। आसमानी बिजली डरावनी होती है। उससे नुक़सान बहुत होता है।'

'बरसात के दिनों में हरियाली बढ़ जाती है।'

'सर्दियों के महीनों में गाय का दूध कम मिलता है।'

'अब भैंस की जगह लोग गाय ही पाल रहे हैं।'

जब सवाल पूछा गया कि बारिश आने से पहले क्या होता है? विद्यार्थियों ने कई सारी बातें बताईं। 'धूप नहीं रहती।' 'बिजली चली जाती है।' 'तेज़ हवा चलती है।' 'घुप्प-सा मौसम हो जाता है।' 'आसमान में बिजली कड़कती है।' 'बिजली के सामान, जैसे– टीवी, मोबाइल, कंप्यूटर आदि चल रहे हों तो वे आसमानी बिजली के गिरने से ख़राब हो सकते हैं।' 'तेज़ हवा चलती है।' 'सांय-सांय की आवाज़ आती है।' 'अँधेरा छाने लगता है।' 'पशु-पक्षियों में हलचल मचने लगती है।' कंचन, भारती और शैलेन्द्र का एक ही गाँव है। भारती ने बताया कि उनके गाँव में एक बार आसमानी बिजली गिरने से दो गाय मर गई थीं। कंचन ने बताया कि कई गायों के बाल जल गए थे।

पहला दिन और चालीस मिनट का पहला वादन! पता ही नहीं चला कब दूसरा घण्टा बज गया। कक्षा से बाहर आते हुए मन में आया कि कविता के शीर्षक पर भी बात नहीं हुई और हम चालीस मिनट में पूरा पाठ पढ़ाने की जल्दी कर बैठते हैं। विद्यार्थियों के लिए पता करने के लिए एक और सवाल रखा गया। सवाल था, पता करो कि यदि तुम्हारे आसपास के जंगल न रहें तो क्या होगा?

दूसरा दिन। पहले दिन की बातों को संक्षेप में रखा। कंचन ने बादलों से आसमानी बिजली की बात याद दिलाई। बादलों की आकृतियों में गोल, घुँघराले, घुमावदार बादलों की, बादलों में दिखने वाली छवियों की बातें हुईं। अंश ने कहा, "पायल के बाल घुँघराले हैं।" कंचन बोली, "घुँघराले बालों में कंघी करना कठिन होता है।" अचानक बातचीत पेड़-पौधों पर पहुँच गई। बच्चे पेड़ों की, जंगल की बातें करने लगे। उन्हें टोकना ठीक न लगा। पेड़ और पौधों के अन्तर पर बहस होने लगी। बच्चों को चुपचाप सुनना भी एक अलग आनन्द है।

विद्यार्थियों को यदि सकारात्मक और भरपूर अवसर दिए जाएँ तो वे अपनी बात बताने को आतुर रहते हैं। यही नहीं, वे दूसरों की बातें ग़ौर से सुनते हैं। सहपाठियों की बातों से सहमत होते हैं तो कभी सिरे से ख़ारिज भी कर देते हैं। ऐसा लगता है कि समूह में बातचीत एक तरफ़ा बातचीत से ज़्यादा कारगर और विभिन्न आयामों वाली होती है। उन्होंने पेड़ों के बारे में बताया। सेमल, पीपल, बरगद, देवदार, काफल, चीड़, बाँज, बुरांश, खड़ीक, ख़ुबानी, मोरपंख, चिल्लू, पोलम, गुरयाल, बेडू और पहिया पेड़ बताए गए। बच्चों ने आँवला, अनार, सेब, नारंगी,

माल्टा, नींबू, अमरूद, नाशपाती, आड़ू, कनेर, कीनू, बम्बू, लिम्बू और चकोतरा के पेड़ों को छोटा बताया। कई बच्चे इस बात से सहमत नहीं थे। छोटे-बड़े के फेर में बात उलझने लगी तो सबके लिए श्यामपट्ट पर नया सवाल लिख दिया गया। विद्यालय में कौन-कौन से पेड़-पौधे हैं? जवाब आने लगे। बोले गए शब्द श्यामपट्ट पर लिखे गए। मोरपंख, खड़ीक, आँवला, सेमल, क्रिसमस ट्री, चीड़, गुलाब, नारंगी, कनेर, बोतल ब्रश और पीपल। नमित ने पीली पत्तियों की बात की। पेड़-पौधे, बेल, झाड़-तना आदि पर वे अलग-अलग मत रख रहे थे। प्याज़, आलू, केला, लहसुन, मिर्च, बैंगन, टमाटर और अंगूर का वर्गीकरण करते हुए भी वे भिन्न-भिन्न राय रख रहे थे।

अगला सवाल था कि हरी पत्तियाँ पीली क्यों पड़ जाती हैं? किसी को कुछ नहीं सूझा। कंचन ने बस 'पतझड़' शब्द बोला। फिर कक्षा में ख़ामोशी छा गई। सो, दूसरा सवाल लिखना पड़ा। पतझड़ क्यों आता है? अब जवाब आने लगे। यह कहना ठीक होगा कि इस ओर से सवालों के जवाबों का स्पष्टीकरण देने से बचा गया। विद्यार्थियों को बोलने के अधिकाधिक अवसर दिए गए।

वे लगातार बता रहे थे। 'झड़ चुकी पत्तियों से खाद बनती है।' 'चारा-पत्ती और कई कीटों का भोजन पतझड़ में ख़ूब हो जाता है।' 'हर चीज़ का समय आता है।' 'पतझड़ एक मौसम है।' 'ताकि हरे पत्ते आ सकें।' 'हर चीज़ की उम्र होती है।' 'पीले पड़ चुके पत्तों का जीवन समाप्त हो गया है।' शैलेन्द्र बोला, "पूरा पेड़ साल में एक बार ख़ाली हो जाता है। फिर धरती उसे नए पत्तों से भर देती है।"

पत्तियाँ हरी ही होती हैं। इस बात से सब सहमत नहीं थे। लाल, पीली और नीली पत्तियों की बात भी सामने आई। अधिकतर पत्ते हरे क्यों होते हैं? जवाब में क्लोरोफ़िल शब्द सामने आया। अब नमित ने कहा, "पेड़ों की पत्तियाँ रंग-बिरंगी होनी चाहिए, तब जंगल रंगीन हो जाएगा।" चित्र पर बातचीत करते समय बच्चों के चेहरे में आत्मविश्वास था। वे चिन्तामुक्त भी थे। चूँकि चित्र पर नए सिरे से बातचीत का मक़सद कविता की ओर भी ले जाना था, जैसे ही लगा कि बातें विषयान्तर करने लगी हैं कविता के शीर्षक की ओर ध्यान दिलवाया गया। 'भगवान के डाकिए' कविता के शीर्षक पर बात हुई। इसे श्यामपट्ट पर लिखा गया। कुछ देर ख़ामोशी पसर गई। बच्चों की ओर देखा तो कुछ शब्द सुनने को मिले– भगवान, पूजा, डाकिया, स्वर्ग, नरक, ईश्वर, अल्लाह, गीता, राम, सीता और शिव। पूजा पर बात हुई। कंचन पूजा-पाठ, भगवान को नहीं मानती। पायल ने घर में शिवजी की फ़ोटो की बात बताई। सब अपने-अपने भगवान के बारे में बताने लगे। कंचन असहज थी। वह बोली, "मेरे घर में कोई फ़ोटो नहीं है। हम केवल परमेश्वर का ध्यान करते हैं।" पायल का सवाल कंचन से था, "परमेश्वर कैसे हैं?" कंचन ने कहा, "जब परमेश्वर को किसी ने देखा ही नहीं है, उनकी फ़ोटो कैसे बन सकती है?" पायल का सवाल था, "जब भगवान को किसी ने नहीं देखा है तो उनकी तस्वीर कैसे बनाई गई है?" पायल ने फिर कहा, "परमेश्वर भी तो भगवान हैं!" परम्पराएँ, मान्यताएँ, अनुमान, कल्पना, आस्था और विश्वास को आगे लाकर अब शीर्षक से आगे बढ़ने की बाध्यता उचित लगी।

डाकिया कौन होता है? अब इसपर बात होने लगी। जवाब थे। 'जो डाक लाता है।' 'पोस्टमैन का काम चिट्ठी बाँटना होता है।' 'उसके पास सरकारी बैग होता है।' 'जिसको लिखना नहीं आता, उसका अँगूठा निशान लिया जाता है।' 'नीली स्याही का स्टैम्प पैड उसके पास होता है।' फिर श्यामपट्ट पर डाकिए के काम लिखे गए– नया आधार कॉर्ड, एटीएम, मनीऑर्डर, पार्सल, राखियाँ, दवाइयाँ, आदि। भारती ने बताया, "नमित के पिता भी डाकिया हैं।" पोस्ट ऑफिस की बातें हुईं। गैण्ड, खोन और मंझेली गाँव में डाक बाँटने की बात आई। एक डाकिए के पास कई गाँव या मोहल्लों में डाक पहुँचाने

का काम होता है। सर्दी हो या गर्मी। हर मौसम में डाक पहुँचाने का काम ज़िम्मेदारी भरा होता है। 'डाकिया डाक लाया, ख़ुशी का पैग़ाम लाया' गीत की चर्चा की गई तो वे चुप हो गए। कक्षा में किसी भी विद्यार्थी ने इस गीत को पहले नहीं सुना था। जब उन्हें बताया गया कि यह एक फ़िल्मी गीत है, तो वे हैरान हुए। नमित का चेहरा गर्व से भरा हुआ था। प्रेषक से प्रेषिती तक और पोस्टकार्ड से लिफ़ाफ़े तक, एक जगह से दूसरी जगह डाक कैसे पहुँचती है? अब कैसे चिट्ठियों का आकार बदल गया है? इंटरनेट से भी चिट्ठियाँ पूरी दुनिया में कैसे भेजी जाती हैं? इस बारे में बातें होने लगीं। सब ध्यान से बातचीत में शामिल रहे। अगला सवाल था– पौड़ी का मुख्य डाकघर किसने नहीं देखा है? सबने हाथ उठाए। यह जानकर हैरानी हुई। सभी विद्यार्थी कई बार पौड़ी आ-जा चुके हैं लेकिन डाकघर किसी ने नहीं देखा था। उन्हें सुझाव दिया गया कि अगली बार जब पौड़ी जाएँ तो मुख्य डाकघर ज़रूर देखें। छात्रों को सूचनात्मक और जानकारीपरक बातें बताई गईं। चालीस मिनट कब बीते पता ही नहीं चला।



तीसरा दिन। पोस्टमैन की भूमिका से बात शुरू की गई। फिर कविता का आदर्श पाठ किया गया। छात्र देखने-पढ़ने के साथ वाचक स्वर सुन रहे थे। छात्रों से पाठ्यपुस्तक बन्द करने का अनुरोध किया गया। उनसे कहा गया कि अब वे ज़ुबानी उन शब्दों को साझा करेंगे जो कविता में आए हैं। भगवान, पानी, पहाड़, हवा, धरती, देश, पक्षी, बादल, डाकिए, चिट्ठियाँ, पेड़, पौधे, पानी और पहाड़ जैसे शब्द आए। कुछ छात्रों ने तीन से चार शब्द बताए। ख़ुशी और सुरभि ने कविता की दो-तीन पँक्तियाँ अपने अनुभव के आधार पर सुनाईं। पंकज, ख़ुशी, सुरभि, पायल और विनीता ने सहज रूप से कविता का पाठ किया। फिर सवाल था– पक्षी और बादल को भगवान के डाकिए क्यों कहा गया होगा? छात्रों ने मौखिक जवाब दिए। 'पक्षी और बादल मौसम की सूचना देते हैं।' 'वे एक दिशा से दूसरी दिशा में जाते हैं।' 'हमें मौसमों के बदलाव की सूचना देते हैं।' 'भगवान पूरी दुनिया के होते हैं। वे कहीं भी जा सकते हैं।' 'पक्षी और बादलों के साथ कोई रोक-टोक नहीं है।' 'वे पाकिस्तान भी जा सकते हैं, चीन भी जा सकते हैं।' 'पक्षी और बादलों के लिए पूरी धरती एक समान है।' 'उनका कोई घर नहीं है। उनके लिए सीमा या तार-बाड़ नहीं कर सकते।' 'पक्षी हों या बादल। उन्हें खुली हवा में आसमान में उड़ना अच्छा लगता है।' 'पक्षियों के मज़े हैं। वे जब मर्ज़ी हवा में उड़ सकते हैं।' इस सवाल ने बच्चों को बहुत उत्साहित कर दिया। वे पक्षी और बादल पर ख़ूब सारी बातें बताना चाहते थे।

सुरभि ने कहा, "मनुष्य भेदभाव करता है। पक्षी और बादल भेदभाव नहीं करते।" कंचन ने देस, देश और महादेश की बात कही। पायल बोली, "देस हमारे गाँव से बाहर मैदानी क्षेत्र को कहते हैं। देश हमारा भारत है। महादेश, जैसे चीन एक महादेश है।" कई जवाबों के बाद मानचित्र की आवश्यकता महसूस हुई। ग्यारहवीं कक्षा से विश्व का राजनैतिक मानचित्र लाया गया। श्यामपट्ट के पास मानचित्र टाँग दिया गया। सभी बच्चों से आग्रह किया गया कि वे मानचित्र के सम्मुख आकर उसे ग़ौर से देखें।

पाँच मिनट तक सभी बच्चों ने मानचित्र को अपने-अपने स्तर पर देखा। उन्हें लग रहा था कि इसके बाद ज़रूर कुछ-न-कुछ सवाल पूछे जाएँगे। ऐसा किया भी गया। अब कुछ सवाल उनके समक्ष रखे गए। वे थे– भारत किस महाद्वीप में है? कुल कितने महाद्वीप हैं? दुनिया में कितने महासागर हैं? सबसे बड़ा महाद्वीप कौन-सा है? सबसे छोटा महाद्वीप कौन-सा है? मानचित्र पर इनकी पहचान कराना और देखना-दिखाना छात्रों को अच्छा लगा। समुद्र और जल आधारित कई बातों पर छात्र बात करने लगे। बात हवा के सन्दर्भ में भी हुई। छात्र इस बात से सहमत थे कि हवा के ज़रिए सुगन्ध या दुर्गन्ध फैलती है। भाप कैसे बनती है? इसपर कई तरह के विचार सामने आए। विनीता ने बताया, "बारिश के बाद धूप आती है तभी भाप बनती है। घास और फूलों की पंखुड़ियों पर टिका पानी भाप बनकर उड़ता है। चाय, गरम दूध, चूल्हे पर बनते दाल-भात, आदि से भी भाप आती है।" बात बादल के बनने पर जा टिकी। जल-चक्र पर भी बात हुई। हर कोई अपनी बात बताने को आतुर दिखाई दिया। पेड़-पौधों की बातें फिर से सामने आईं।

समय कम था। बातचीत से यह भी जानकारी मिली कि बच्चों के प्रिय विषयों में प्रकृति भी है। वे पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, नदी-पहाड़ पर लोक में व्याप्त धारणाओं और मान्यताओं के साथ सटीक जानकारियाँ भी रखते हैं। बच्चों ने पक्षी, बादल, भगवान, चिट्ठी, पेड़, पहाड़, हवा, धरती, आदि के पर्यायवाची बताए। छात्रों ने एक, सुगन्ध और धरती के विलोम भी बताए।

पद्य पाठ, बातचीत और पठन से भाषा

तीन दिन, और प्रत्येक दिन चालीस मिनट। यानी कुल दो घण्टे एक ही पाठ पर बातचीत हुई। बार-बार श्यामपट्ट का उपयोग किया गया। छात्रों के पास बताने के लिए असीमित, अथक, अवर्णनीय बातें थीं। कोशिश थी कि छात्रों की बोली गई बातों को वाक्यों में नहीं भी तो शब्दों में ही सही समेटा जाए। पहले दिन के आरम्भिक दस मिनट में ही बोलना, सुनना और पढ़ना एक साथ चलता रहा। *एनसीएफ़ 2005* में कहा गया है– "पाठ्यचर्या में स्पष्टतः सीखने वाले की प्रगति की क्रमिकता को शामिल किया जाना चाहिए जो अवधारणाओं को समझकर मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाती है। गणनात्मक कौशल के अलावा पैटर्न्स को पहचानने, अभिव्यक्त करने और समझाने पर, या समस्याओं के हल में आकलन करने और अनुमान का इस्तेमाल करने, सम्बन्ध पहचानने और सम्प्रेषण व तर्क की दृष्टि से भाषागत कौशल का विकास करने पर ज़ोर दिया जाए।"

'भगवान के डाकिए' कविता पर हुई बातचीत भाषागत कौशल के विकास में सहायक सिद्ध हुई, यह स्पष्ट है। लेकिन हम ऐसा क्यों नहीं मानते कि बातचीत और कक्षा में हुए आपसी संवाद भाषागत कौशल के विकास की प्रमुख कड़ी हैं। हम हमेशा छात्रों की उत्तर पुस्तिका को लिखित साक्ष्य क्यों मानना चाहते हैं? बार-बार श्यामपट्ट पर छात्रों द्वारा दी गई सहमति, राय व सुझावों का लिखना स्वयं में देखने, पढ़ने, सोचने और समझने को बढ़ावा देने वाला ही रहा। तीनों दिन श्यामपट्ट के सहारे मौखिक बातचीत को आगे बढ़ाया जाता रहा। एक पल के लिए भी कहीं ठहराव नहीं आया।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया है चित्र पर चर्चा से बातचीत आगे बढ़ी। कविता का अनुवाद, अर्थ एवं व्याख्या जैसा परम्परागत शिक्षण नहीं किया गया। लेकिन अन्ततः बच्चे कविता में आए शब्दों को समझ गए। अब क्या हम कह सकते हैं कि बातचीत को भाषा की कक्षा में भाषा बरतने का कोई सहायक औज़ार, ज़रिया या स्रोत माना जा सकता है? कक्षा में महज़ ख़ूब सारी बातचीत को कैसे सार्थक माना जा सकता है?

सम्भवतः इस सवाल का जवाब 'हाँ' में होगा। शायद यह सबसे ज़रूरी काम है। ऐसा काम, जिसके लिए और अधिक समय निकाला जाना चाहिए। कई बार कविता के मायने और विस्तार सालों-साल बाद अपना पता देते हैं। फिर भाषा की कक्षा में कविता का अर्थ और

नपी-तुली किताबी व्याख्या से रचनात्मकता हासिल नहीं की जा सकती। यदि विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्यों की ओर बढ़ाना है तो इस तरह की मौखिक बातचीत के अवसर कक्षा में दिए ही जाने चाहिए।

कक्षा में इन तीन वादनों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को संक्षिप्त में रखें तो पाठाधारित चित्र-रेखांकन पर चर्चा कराना लाभप्रद हुआ। जैसा हमने देखा यह मौखिक बातचीत सपाट नहीं थी साथ ही इस बातचीत ने न केवल विद्यार्थियों को फिर से चीज़ों, स्थितियों, परिस्थितियों, परिवेश, समुदाय और अपने मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण करने की ओर बढ़ने में मदद की, बल्कि उन्हें यह भी अहसास कराया गया कि वे जो सोचते हैं उसकी भी अहमियत है।

मौसमों, पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण करते हुए विद्यार्थी कहीं-न-कहीं विज्ञान और पर्यावरण के विषय की ओर भी बग़ैर दबाव के जुड़ाव महसूस करने लगे। और विषयों की दीवारें अनायास ही गिरती चली गईं। भाषा की कक्षा में भाषाई कौशलों के विकास के साथ-साथ बच्चों में अन्य विषयों के प्रति अनुराग भी जाग सकता है।

- भाषा की कक्षा का अर्थ शुद्ध बोलना, लिखना और मानक भाषा की मशक़्क़त करना मात्र नहीं है।

दुधबोली, घर की भाषा या क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली को कक्षा-कक्ष में स्थान दिया जा सकता है। वे शब्द भी अर्थपूर्ण और समझ को अभिव्यक्त करने में काफ़ी सहायक होते हैं।

मुझे लगता है कि भाषा की किताब के पाठ मात्र अर्थ बताने या समझाने के लिए नहीं हैं। हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना ही कक्षा-कक्ष में ख़ास मक़सद होना चाहिए। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* भी कहती है कि रटन्त पद्धति और केवल परीक्षा के लिए पढ़ाई से हटकर हमें अवधारणात्मक समझ पर ज़ोर देना होगा। इन तीन दिनों के सीमित वादनों में ही सही, सिर्फ़ मौखिक बातचीत ही केन्द्र में रही। विद्यार्थियों ने सुने हुए को समझा। वे अपनी दी गई राय का संक्षिप्तीकरण श्यामपट्ट पर लिखता हुआ देख रहे थे, पढ़ रहे थे और सहपाठी की राय सुन रहे थे। उनकी दी गई राय को श्यामपट्ट पर कैसे दर्ज किया जा रहा है, उसे भी पढ़ रहे थे। पूरी बातचीत में अन्य दिनों की कक्षा से इतर वह सहज थे। उनकी अभिव्यक्ति में भी सहजता थी। वे समाज, प्रकृति, घर, पूर्वज, आदि से जुड़ी कई नई-पुरानी बातों से ख़ुद को जोड़ पा रहे थे। सामूहिकता और सहभागिता के स्तर पर वे खुली बातचीत का हिस्सा बन रहे थे। सकारात्मकता के साथ-साथ वे तर्कसंगत बातों की ओर बढ़ रहे थे। बेझिझक अपनी बात कह पा रहे थे। कक्षा में अमूमन चुप रहने वाले विद्यार्थी भी अपने अनुभव व्यक्त कर रहे थे। यह अनुभव कौशलों के विस्तार का हिस्सा रहा। इस लिहाज़ से छात्रों के साथ यह तीन दिन यादगार बन गए हैं। प्रयास रहेगा कि कक्षा-कक्ष में आनन्ददायी माहौल आगे भी बना रहे।

लेख के चित्र एनसीईआरटी की पुस्तकों *वसंत* भाग-1 (कक्षा छह) और भाग-3 (कक्षा आठ) से साभार।

अनीता चमोली उत्तराखंड के पौड़ी गढ़वाल जनपद के राजकीय आदर्श इंटर कॉलेज कालेश्वर में हिन्दी की अध्यापिका हैं। जनपद चमोली एवं पौड़ी के दूरस्थ विद्यालयों में पिछले पन्द्रह वर्षों से शिक्षण कर रही हैं। वे कविताएँ लिखती हैं। बाल कहानियाँ भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। रूम टू रीड की कहानी लेखन प्रतियोगिता में उनकी एक कहानी ने दूसरा स्थान प्राप्त किया था। विद्यालयी गतिविधियों में उत्कृष्ट कार्य के लिए जानी जाती हैं।

सम्पर्क : anitachamolianu@gmail.com

कहानी क्यों ?
कहानियाँ और समझ के विभिन्न आयाम

अनीता ध्यानी

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा की पढ़ाई के दौरान कहानी और कविता विधा को एक महत्त्वपूर्ण अवयव के तौर पर देखा जाता रहा है। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने बच्चों के साथ कुछ कहानियों पर किए गए कार्य के अनुभव प्रस्तुत किए हैं। इन अनुभवों के आधार पर यह बताने की कोशिश की गई है कि बच्चों के जीवन में कहानी क्या-क्या करती है, बच्चे किस तरह की प्रतिक्रियाएँ देते हैं, कहानी पर कैसे काम किया जाए और किन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाए? लेख कहानी सुनाने-पढ़ने से जुड़ी कुछ मान्यताओं पर भी सवाल रखता है। सं.

जब मैं विद्यार्थी थी तब भीष्म साहनीजी की एक कहानी पढ़ी थी, जिसका शीर्षक था 'अहम् ब्रह्मास्मि'। इस कहानी का पात्र अँग्रेज़ीयत को पसन्द करता था। लेकिन एक दिन अँग्रेज़ों द्वारा उसे शौचालय से धक्के मारकर व गाली देकर बाहर निकाला जाता है क्योंकि वह अश्वेत था। शाम को घर लौटकर वह ज़ोर से अपनी मुट्ठियाँ भींचता है और आँखें बन्द करके ज़ोर-ज़ोर से कहता है, 'अहम् ब्रह्मास्मि'। ठीक से याद नहीं है कि ये कहानी मैंने हाईस्कूल में पढ़ी या इन्टर में, लेकिन उस समय तो कहानी से मैं इतना ही समझ पाई थी कि अँग्रेज़ रंगभेद करते थे। इसलिए ही उस अश्वेत को धक्के देकर निकाल दिया होगा और क्योंकि वह अश्वेत था उसे ये बात बुरी लगी। लेकिन उस घटना के बाद उसका मुट्ठियाँ भींचकर 'अहम् ब्रह्मास्मि' बोलने का क्या कारण रहा होगा? ये मेरी समझ से परे था। डर और हिचक के कारण शिक्षकों के सामने अपनी बात रखना मुश्किल काम था तो उनसे भी नहीं पूछा। यह बात मेरे अन्दर एक प्रश्न बनकर अंकित रही कि क्यों वह पात्र 'अहम् ब्रह्मास्मि' शब्द को बार-बार दोहराता है। उसके बाद उस कहानी को पढ़ने का संयोग नहीं बना। लेकिन बहुत सालों बाद मैं उसका मन्तव्य ख़ुद से ही समझी। अब मुझे लगता है, 'अहम् ब्रम्हास्मि' कहकर वह अपने अन्दर भरी हीन भावना को कम करने का प्रयास कर रहा होगा। उस समय का यह अनुभव शिक्षिका बनने के बाद भी याद रहा, और मैंने कोशिश की कि बच्चों पर कहानी, कविता के हमारे द्वारा तय अर्थ और हमारी समझ न थोपी जाए बल्कि इन्हें केवल भाषा सीखने के लक्ष्य के रूप में ही उपयोग में लाया जाए।

इसी प्रकार यह भी ज़रूरी नहीं कि सभी बच्चे कहानी को एक ही तरह समझेंगे और उससे एक जैसी चीज़ें ही ग्रहण करेंगे। कहानी सुनने के बाद बच्चे उसमें से क्या ग्रहण करें ये उनपर ही छोड़ देना उचित होगा। इसका एक उदाहरण मेरे अनुभव से इस प्रकार है :

एक बार कक्षा 2 के बच्चों को ख़रगोश और कछुए की दौड़ वाली कहानी सुनाई गई। इस कहानी में कछुए की जीत होती है। कहानी के अन्त में बच्चों से प्रश्न किया गया कि बताओ दौड़ में ख़रगोश से कछुआ कैसे जीता? उस समय उस कक्षा में 14 बच्चे थे जिनमें कुछ बच्चे शान्त रहे, अधिकतर ने कहा कि कछुआ इसलिए जीता क्योंकि वह चलता रहा

रुका नहीं। किन्तु एक बच्चे निखिल का जवाब अलग था उसने कहा, क्योंकि ख़रगोश सो गया था। जवाब किसी का भी ग़लत नहीं था। यदि ख़रगोश सोता नहीं तो चाहे कछुआ निरन्तर चलता क्या, दौड़ता भी रहता तो भी ख़रगोश से नहीं जीत सकता था। सोच और समझ सबकी भिन्न होती है।

मेरा एक और अनुभव जिसमें एक बच्ची सभी बच्चों को अपने दृष्टिकोण से चौंका देती है। कक्षा में बच्चों को एक कहानी सुनाई गई जिसमें राजू नाम का एक बच्चा दो सेब लेकर आता है। उसकी बहिन मीना कहती है, मैं भी सेब खाऊँगी। राजू झट से एक सेब खाने लगता है। फिर झट से दूसरा सेब भी खाने लगता है। इसके बाद बच्चों से बातचीत की गई कि राजू ने झट से दूसरा सेब भी क्यों खाना शुरू किया होगा? यह कहानी 17 बच्चों को सुनाई गई थी, जिसमें अधिकतर बच्चों ने कहा कि राजू अपनी बहिन मीना को सेब नहीं देना चाहता था, किसी ने कहा, राजू भूखा था। इसी प्रकार के कुछ अन्य बच्चों के जवाब भी थे। किन्तु कक्षा 3 की एक बच्ची निकिता ने कहा कि राजू ये देखना चाहता था कि सेब मीठा है या खट्टा। अगर मीठा होता तभी अपनी बहिन को देता। यह सुनकर बाक़ी बच्चे आपस में कहने लगे, अरे हाँ! ऐसा भी हो सकता है। हमने तो ऐसा सोचा ही नहीं।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कहानियों को अपने जीवन से जोड़कर भी बच्चे निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। एक बार कक्षा में 'चिड़िया के बच्चे' कहानी सुनाई जिसमें गेहूँ के खेत में चिड़िया का घोंसला होता है। घोंसले में चिड़िया के दो बच्चे थे। एक दिन किसान अपने बेटे के साथ खेत में आकर अपने रिश्तेदारों से कहकर गेहूँ कटवाने की बात करता है। बच्चे भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि वे अभी उड़ने लायक़ नहीं हुए थे। चिड़िया जब दाना लेकर वापस आती है तो बच्चे, किसान और उसके बेटे द्वारा कही बात अपनी माँ को बताते हैं। चिड़िया कहती है, चिन्ता मत करो अभी गेहूँ नहीं कटेंगे। ऐसे ही कुछ दिन बाद फिर किसान अपने गाँव वालों से कहकर, व कुछ दिन बाद पड़ोसियों से फ़सल कटवाने की बात कहता है। लेकिन चिड़िया कहती है कि अभी चिन्ता की बात नहीं, फ़सल अभी नहीं कटेगी। जब एक दिन किसान स्वयं आकर गेहूँ काटने की बात कहता है, तो चिड़िया अपने बच्चों से कहती है अब फ़सल कट जाएगी। अब तक बच्चे भी उड़ने लायक़ हो गए थे। चिड़िया बच्चों सहित उड़ जाती है। अगले दिन फ़सल भी कट जाती है। कहानी सुनाने के बाद बच्चों से पूछा गया कि चिड़िया को कैसे पता चला होगा कि गेहूँ अब कट जाएँगे? उस दिन बच्चों से अपेक्षित जवाब न मिल पाया किन्तु लगभग डेढ़ महीने बाद एक बच्ची नंदनी ने जवाब देकर चौंका ही दिया। पूछने पर उसने कहा, मेरी मम्मी को हमारे लिए कपड़े लेने बाज़ार जाना था। मम्मी को ताई के साथ जाना था लेकिन ताई एक हफ़्ते से हाँ कहतीं, पर जाती नहीं। फिर कल मेरी मम्मी ख़ुद ही कपड़े लेकर आ गईं, जैसा किसान ने ख़ुद

ही गेहूँ काटे थे। वह कहानी को अपने जीवन से जोड़कर उद्देश्य तक पहुँची। और यह भी कि कहानी इतने दिन बाद भी उसके ज़ेहन में थी।

बच्चे कहानी को अपने आसपास की घटनाओं और अनुभवों से जोड़कर देखते हैं इसका एक और वृतान्त साझा करना चाहूँगी।

एक दिन कक्षा 5 के छात्रों को पुस्तकालय की एक किताब से गड़रिए की कहानी पढ़कर सुना रही थी। उसी कमरे में कक्षा एक की दो छात्राएँ भी बैठी थीं। उन दोनों को मैंने अलग कार्य दिया हुआ था। जब मैंने कहानी पढ़कर पूरी की तो कक्षा 5 के बच्चों को कहानी को अपने शब्दों में लिखने को कहकर मैं उस किताब से कुछ अन्य कहानियाँ पढ़ने लगी। तभी कक्षा एक की बच्ची, जिसको अभी किताब पढ़ना नहीं आती थी, अपनी जगह से उठी, मेरे हाथ से किताब उठाई और अपनी सीट में जाकर उस किताब को शुरू से अन्त तक पलटती रही और उसके चित्र आदि देखती रही। किताब देखते-देखते कभी बीच-बीच में हल्के से मुस्कुरा देती तो कभी अपनी भौहें सिकोड़कर कुछ समझने का प्रयास करती। इस बीच मैं बिना कुछ बोले चुपचाप उसी को देख रही थी। पूरा पलटने के बाद वो फिर से उस किताब को मेरे पास रखकर चली गई। उसे ऐसा करते देखकर मुझे लगा कि शायद मेरे किताब से कहानी सुनाने और बाद में किताब को पढ़ते देख किताब पढ़ने की उसकी जिज्ञासा इतनी बढ़ गई होगी कि वो मेरे हाथ से ही किताब उठाकर ले गई। वह चित्रों को पढ़ने का प्रयास करती रही। जब उससे पूछा गया तो वह चित्र पढ़कर झट से बता देती। एक स्थान पर दौड़ती गाय का चित्र देखकर वह बोली कि बाघ के डर से गाय भाग रही है। 'भेड़िया आया' वाली कहानी में पेड़ देखा तो वह उसे आम का पेड़ बताकर कहने लगी, मैमजी, इस पेड़ पर बहुत सारे बन्दर रहते हैं। एक दिन शुभम ने आम तोड़ने के लिए पत्थर फेंका तो बन्दर ने नीचे आकर उसे थप्पड़ मारा और फिर से पेड़ पर चढ़ गया। उसने जो भी चित्र देखा उसे अपने परिवेश से जोड़कर देखा, और घटना को भी उससे जोड़ दिया।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

इसी प्रकार बच्चे कहानियों को सुन-पढ़ कर भूल नहीं जाते बल्कि उन्हें अलग-अलग सन्दर्भों में अपने जीवन से जोड़कर देखते रहते हैं। हमें यही दृष्टि व जिज्ञासा तो पैदा करनी है छात्रों के अन्दर, ताकि किताबों में उनकी रुचि बढ़े, और उन्हें लगे कि किताबों के अन्दर बहुत कुछ आनन्द दायक है। कहानी इसका बहुत सुन्दर ज़रिया जान पड़ती है। लेकिन देखा गया कि कहानी सुनाने के बाद कहानी से मिलने वाली शिक्षा भी बच्चों को बता दी जाती है, ये जाने बग़ैर कि हर बच्चे का अपना अलग विचार, अलग दृष्टिकोण होता है। इसपर मुझे ख़लील जिब्रान की उक्ति याद आती है। उन्होंने बच्चों के बारे में कहा है, "तुम उन्हें प्यार दे सकते हो लेकिन विचार नहीं, क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं।

तुम उनका शरीर पिंजड़े में बन्द कर सकते हो लेकिन उनकी आत्मा नहीं, क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है"। बाल मनोविज्ञान को उजागर करती यह बात आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि तब थी।

कहानी सुनना और पढ़ना इतना आनन्द दायक है कि हम बचपन में छुप-छुप कर कहानियाँ पढ़ते थे, क्योंकि तब कहानी पढ़ना समय की बर्बादी माना जाता था। कभी स्कूल में बस्ते से कहानी की किताब मिल जाने पर शिक्षकों से बहुत डाँट पड़ती थी लेकिन आज समय बदल चुका है। आज शिक्षक ख़ुद बच्चों को कहानियाँ पढ़ने को कहते हैं। कुछ शिक्षक बाल साहित्य के प्रति बहुत सजग हैं व बाल साहित्य का सृजन भी कर रहे हैं। शिक्षक बच्चों के बीच रहकर बाल मन व रुचियों को ज़्यादा बेहतर ढंग से समझ सकता है।

अनीता ध्यानी विगत ढाई दशक से शिक्षा में काम कर रही हैं। वे वर्तमान में राजकीय प्राथमिक विद्यालय देवराना, ज़िला पौड़ी, उत्तराखंड में प्रधानाध्यापिका हैं। वे प्राथमिक कक्षाओं में सभी विषय पढ़ाती हैं। उनकी कहानी, कविताएँ एवं लेख लिखने और हिन्दी भाषा शिक्षण में विशेष दिलचस्पी है। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ मिलकर आपने बच्चों के लिए बाल साहित्य मेलों का आयोजन किया है।

सम्पर्क : anudhyani929@gmail.com

किताबों से सीखते बच्चे

दिनेश पटेल



चित्र : दिनेश पटेल

कोरोना महामारी के चलते पिछले वर्ष देशभर के लाखों बच्चों का भारी नुक़सान हुआ है जिसकी भरपाई कर पाना लगभग असम्भव है। ऐसे में सोचा गया कि क्यों न मोहल्ला कक्षाओं के ज़रिए इन बच्चों के साथ कुछ रचनात्मक चीज़ें की जाएँ। इससे उनके सीखने का तारतम्य भी बना रहेगा और वे पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से जुड़े भी रह पाएँगे। इसी सोच के मद्देनज़र अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन एवं शासन के सहयोग से मध्य प्रदेश के धार ज़िले की धरमपुरी तहसील के 11 शासकीय प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों की पढ़ने-लिखने की क्षमता को सशक्त बनाने हेतु अक्तूबर 2020 से पुस्तकालयों का संचालन किया जा रहा है।

इन शासकीय विद्यालयों में पुस्तकालय संचालन का प्रमुख मक़सद था— स्कूली बच्चों तक अच्छा साहित्य उपलब्ध कराना, जिससे उन्हें पढ़ने-लिखने व अभिव्यक्ति के अवसर मिलें ताकि वे अपने पढ़ने-लिखने के कौशल के स्तर को कुछ हद तक बढ़ा सकें। इन क्षमताओं के पोषण के लिए हमने इन बच्चों के साथ लिखने-पढ़ने एवं उनको स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर मुहैया कराने के लिए समय-समय पर कुछ रचनात्मक गतिविधियाँ भी कीं जिनसे उनकी क्षमताओं में होने वाली वृद्धि को किसी-न-किसी रूप में आँका जा सके। पुस्तकालय की किताबों पर आधारित इन गतिविधियों में पढ़ी गई किताबों पर विस्तृत चर्चा, अपने रोज़मर्रा


चित्र : दिनेश पटेल

के अनुभवों को मोहल्ला क्लास में अभिव्यक्त करना और उनपर बातचीत करना, इन अनुभवों को लेखन में तब्दील करना, स्वतंत्र चित्रकारी, कहानी सुनाना, चित्रों से कहानी बनाना, आदि चीज़ें शामिल थीं। कुछ स्कूलों के चुनिन्दा बच्चों से पढ़ी गई किताबों के सन्दर्भ में अनौपचारिक रूप से हुई दिलचस्प चर्चा से मज़ेदार बातें भी हमें पता चलीं।

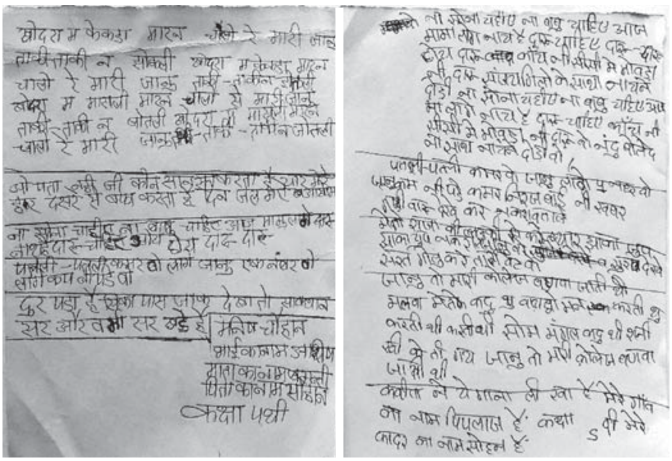
अनुभव बताते हैं कि बच्चे किताबों से बहुत-सी चीज़ें एक साथ सीखते हैं। पिछले छह माह में जब भी स्कूल में उनके साथ गतिविधियाँ की गईं, उनमें बच्चों की भागीदारी काफ़ी रोचक और रचनात्मक रही। बच्चे कई चीज़ें ख़ुद से सीखते हैं। पढ़ने-लिखने की इन रचनात्मक गतिविधियों में नियमित और सक्रिय भागीदारी के चलते बच्चों में अपेक्षाकृत अधिक सक्रियता देखने में आई है। बेशक उनका पढ़ना-लिखना प्रभावित हुआ है लेकिन जिन स्कूलों के शिक्षक साथियों ने इस दौरान भी बच्चों के साथ काम को जारी रखा है उनके बच्चों में थोड़ी उम्मीद ज़रूर दिखाई देती है। ख़ासतौर से पुस्तकालय की किताबों को पढ़ना, पढ़कर एक दूसरे को सुनाना और अन्य कोई कहानी, क़िस्सा या वार्ता, जो बच्चे अपनी भाषा में जानते हैं; को लेकर चर्चा करना काफ़ी दिलचस्पी जगाने वाला अनुभव रहा। इस तरह की गतिविधियों से बच्चे काफ़ी ऊर्जा हासिल करते हैं। प्रारम्भिक चरण में हालाँकि यह प्रक्रिया धीमी चली लेकिन बाद में इसमें काफ़ी तेज़ी आई। जब भी हम स्कूल में पहुँचते, बच्चे पहले से लिखी अपनी रचनाएँ हमें थमा देते। उनकी इन रचनाओं में उनके गाँव एवं आसपास के क्षेत्र की संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। झोला पुस्तकालय की किताबों के बहाने हुई अनौपचारिक चर्चाओं में अनायास ही आसपास के हाट-मेले, जतराएँ, धार्मिक तीज-त्योहारों एवं रीति-रिवाज, परम्पराएँ, आदि शामिल हो जाया करतीं। यही अनुभव बाद में कुछ बच्चों के स्वतंत्र लेखन का हिस्सा भी बने।

बानगी के तौर पर बच्चों के लेखन का एक उदाहरण देखते हैं, जो उन्होंने भीली-हिन्दी दोनों भाषाओं में मिश्रित रूप में लिखने का प्रयास किया है :

मातृभाषा (भीली) में अनुभव लेखन

कक्षा चौथी और पाँचवीं के बच्चों से स्वतंत्र लेखन की गतिविधि पर मैंने चर्चा की और पूछा कि वे अपने घरों में त्योहारों, शादी-ब्याह व मेले / जतरा के समय में क्या-क्या करते हैं? कौन-से गीत या भजन गाते हैं? थोड़ा हँसते हुए जो उन्होंने बताया उसमें से कुछ ही शब्द मेरे पल्ले पड़े। पाँचवीं की एक बालिका ने एक सुन्दर लोकगीत बड़ी सुरीली आवाज़ में गाकर सुनाया लेकिन वह भी मेरी समझ के बाहर था, क्योंकि मुझे उनकी भाषा नहीं आती थी। बहरहाल, मैंने कहा कि वे अपनी मर्ज़ी से कुछ भी लिखें लेकिन लिखें ज़रूर। तब उन्होंने धीरे-धीरे लिखना शुरू किया। इस पूरी प्रक्रिया में मैंने देखा कि जब सभी छात्र-छात्राएँ लिख रहे थे तो वे आपस में एक दूसरे से खुसुर-पुसुर कर रहे थे। और उनके चेहरे पर जो ख़ुशी की चमक थी, देखने लायक़ थी। क्यों न हो भला, आज उन्हें अपनी मर्ज़ी का काम जो मिला था जिसकी उन्होंने कभी उम्मीद नहीं की थी। मैंने सोचा था कि दो-चार बच्चे ही लिख पाएँगे लेकिन जब लिखने के लिए पेपर बाँट रहा था तो देखा कि सभी बच्चे एक साथ मुझसे काग़ज़ माँगने लगे कि सर, हमें भी लिखना है। ख़ैर, अन्त में लगभग पौन घण्टे की इस क़वायद में बच्चों ने जो कुछ भी लिखा उसकी गुणवत्ता को थोड़ी

देर के लिए छोड़ दें, तो आप आश्चर्य करेंगे कि बच्चों ने बेहद बिन्दास तरीक़े से उन गीतों को लिखा जो रोमांच और प्यार की भावना से इस कदर भरे हुए थे कि एक बारगी लग सकता है कि ये अगर तथाकथित 'सभ्य समाज' से आने वाले शिक्षक या किसी वयस्क को पढ़कर सुनाए जाते तो उनकी क्या और किस तरह की प्रतिक्रिया होती, कहना मुश्किल है। क्योंकि जिस तथाकथित 'सभ्य समाज' में हम रहते हैं उसमें इस तरह की शादी-ब्याह और प्यार-मोहब्बत से जुड़ी बातें सहज स्वीकार्य नहीं हैं। हालाँकि आदिवासी भील समाज में प्यार भरे लोकगीत गाना जिनमें ज़रूरी तौर पर नृत्य भी शामिल है, कोई ग़लत या अनैतिक बात नहीं है। ये उनकी संस्कृति का अहम हिस्सा हैं और शायद इसलिए उनकी भाषा में भी इसका अक्स दिखाई पड़ता



छात्र-छात्राओं द्वारा लिखे गए गीतों की बानगी

है। हर समाज की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक बुनावटें और भाषाएँ होती हैं। उसी में वे अपने समाज का तानाबाना बुनते हैं। भाषा तो समाज बनाता है। भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। भाषा ही है जिससे हर समाज अपने स्थानीय ज्ञान के ज़रिए दुनिया-जहान के बाक़ी ज्ञान से रूबरू होता है। बच्चों की इस भाषा को शिक्षण का आधार बनाने से ही हम एक बेहतर और रचनात्मक समाज की नींव डाल सकेंगे और ये बात शिक्षक को ज़रूरी तौर पर समझनी और समझानी होगी। अगर हम इसी तरह से हाशिए के इन समाजों के अपने ज्ञान को स्कूली ज्ञान की सीमा के दायरे में शामिल नहीं करेंगे तो हमारे उन संवैधानिक मूल्यों का क्या होगा जो सबके लिए बेहतर शिक्षा और बेहतर जीवन यापन की बात करते हैं!

शायद इसीलिए इन बच्चों ने भी अपनी इन अन्दरूनी बातों को मुझसे छिपाकर लिखना चाहा था। पर ये क्या कम था, जिसकी मैंने कल्पना तक नहीं की थी; कि बच्चों ने मेरी बात पर भरोसा करके अपनी बात पूरी ईमानदारी से लिखने की कोशिश की। इससे भी महत्त्वपूर्ण और रेखांकित की जाने वाली बात ये कि उन्हें अपनी भीली और हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलाकर लिखने की आज़ादी जो हासिल हुई उससे इन बच्चों ने अपने अन्दर की भावनाओं को बाहर आने का मौक़ा दिया। सैद्धान्तिक तौर पर यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी है कि बच्चे अपनी ख़ुद की भाषा में अपने ज्ञान का सृजन जितना बेहतर हासिल करने की क्षमता रखते हैं उतना किसी दूसरी भाषा में नहीं। *एनसीएफ़ 2005* इस बात को रेखांकित करता है, "बहुभाषिकता, जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।"

उनके लेखन में जब ये सब चीज़ें सहज ढंग से बग़ैर किसी अतिरिक्त प्रयास के दर्ज हो रही थीं तब क्या उन्हें ये बात मालूम थी

कि वे लेखन की इस प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के ज़रिए, जो एक आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र का सबसे अहम और बुनियादी पहलू है, ज्ञान की उस परिधि में दाख़िल हो पाने की तरफ़ बढ़ रहे थे जिसे हमेशा से इस हाशियाकृत समाज से दूर ही बनाए रखने की साज़िशें होती रही हैं। दरअसल कृष्ण कुमार कहते हैं, "स्कूल बचपन और सामाजिक जीवन को एक दूसरे से अलग रखने वाली सीमा बन गई है। स्कूल की चारदीवारी के भीतर ऐसी जानकारी बच्चों को दी जाती है जिसका दैनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कहने को स्कूल बच्चों की भाषा का विकास करता है पर भाषा जीवन के सतत अनुभव से ही अर्थ ग्रहण करती है। भारतीय स्कूल पर पाठ्यपुस्तकों का इतना कड़ा नियंत्रण है कि स्कूल के बाहर स्थित समाज की जीवन्त भाषा कक्षा में प्रवेश नहीं कर पाती।"

लेखन की इस प्रक्रिया में बच्चों ने जो आनन्द लिया उसकी मिसाल पिछले छः माह से भी अधिक समय में इस स्कूल में मुझे कम ही देखने को मिली। दरअसल ये उनकी ख़ुद की ज़िन्दगी की सांस्कृतिक झलकियों के वे नमूने थे जो ज़िन्दगी को बाक़ी गतिविधियों की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुकून और रोमांच से भर देते हैं। और यहीं से रचनात्मकता के बीज फूटते हैं। ये बात आज मैंने इन बच्चों के चेहरों पर इस पूरी प्रक्रिया के दौरान बहुत नज़दीक और सहज ढंग से देखी। मुझे समझ आया कि अपनी संस्कृति में लोग कितने गहरे तक रचे-बसे होते हैं। *एनसीएफ़ 2005* कहता है, "हमारे जगत का जो बोध हमें होता है उसे निर्धारित करने वाले संज्ञानात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक पैटर्न मुख्यतः उस भाषा की संरचना द्वारा निर्मित, सूत्रित, और यहाँ तक कि निर्देशित होते हैं, जिस भाषा को हम बोलते हैं...। एक तरफ़ यदि भाषा हमारी विचार प्रक्रिया को व्यवस्थित करती है तो दूसरी तरफ़ यह हमें मुक्त भी करती है और हमें ज्ञान व कल्पना की अनखोजी दुनिया में ले जाती है।"

एक महत्त्वपूर्ण चीज़ इससे ये निकली कि बच्चे लिखने की प्रक्रिया की तरफ़ बढ़ने लगे



चित्र : दिनेश पटेल

हैं। वे ये समझ पाने की तरफ़ क़दम बढ़ा पाए हैं कि कुछ लिखना व चित्र बनाना सचमुच काफ़ी दिलचस्प और रोचकता से भरपूर होता है। चूँकि इसमें सीखना जैसी चीज़ ज़रूरी तौर पर शामिल रही इसलिए बच्चों को और भी मज़ा आया।

पुस्तकालय से जुड़े कुछ अन्य अनुभव

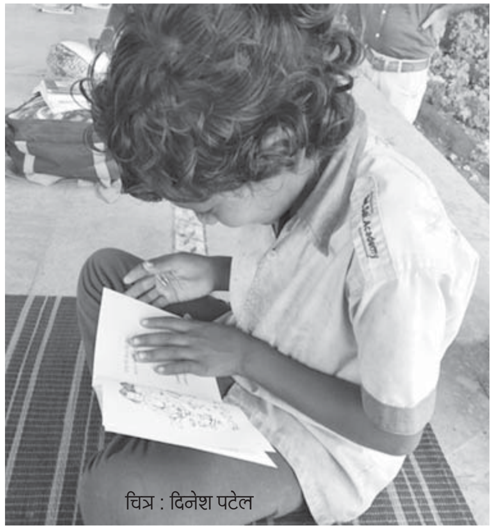
पुस्तकालय के होने से बच्चों की किताबें पढ़ने में रुचि भी बढ़ी है। प्राथमिक स्कूल, जहाँगीरपुरा के शिक्षक बताते हैं कि, "जब से मैंने अपने बच्चों को किताबें दी हैं, उनमें पढ़ने की इतनी ज़बरदस्त ललक जगी है कि अब वे हमेशा किताबों की माँग करते हैं। लॉकडाउन में मैंने पूरे समय एक मन्दिर में मोहल्ला कक्षा लगाई है। लॉकडाउन नहीं होता तो शायद मेरी दूसरी कक्षा के बच्चे भी अच्छे-से किताब पढ़ रहे होते। फिर भी दूसरी के कुछ बच्चों को मैंने धीरे-धीरे पढ़ना सिखा दिया है। स्कूल आने में मुझे अगर थोड़ी देर भी हो जाए तो बच्चे अपने समय से आकर कक्षा में बैठ जाते और मेरा इन्तज़ार करते हैं।"

ऐसे ही एक और अनुभव में एक अन्य प्राथमिक स्कूल की शिक्षिका बताती हैं, "बच्चों

को पढ़ाने में पुस्तकालय की किताबों ने मेरी बहुत मदद की है। बच्चे अपने-आप ही इन किताबों को उठाकर पढ़ने लगते हैं और एक दूसरे को पढ़कर सुनाते भी हैं। मज़े की बात तो ये कि उन्हें इन किताबों की कहानियाँ और कविताएँ काफ़ी मज़ेदार लगती हैं। वे कक्षा में, स्कूल में चलते-फिरते इन कविताओं को गुनगुनाते रहते हैं। जो कविता पोस्टर हमें मिले थे उन्हें बच्चों ने कब का पढ़ लिया और अभी उन्हें सभी कविताएँ याद हैं। दूसरी के कई बच्चे इन पोस्टरों की कविताओं को पूरा पढ़ लेते हैं। इससे उनमें सीखने की रुचि बढ़ गई है। अब तो वे इन्तज़ार करते हैं कि उन्हें नई-नई किताबें पढ़ने के लिए मिलें। इससे मेरा काम भी काफ़ी आसान हो गया।"

प्राथमिक विद्यालय, टाकीजपुरा की शिक्षिका का अनुभव भी रोचक है। वे उनके स्कूल में चल रहे पुस्तकालय के बारे में काफ़ी उत्साह से बताती हैं, "मेरे बच्चे कविता-कहानियों की किताबों में ख़ूब रुचि लेते हैं और जिनको पढ़ना नहीं आता वे भी इन किताबों के चित्रों को देखकर अपनी मर्ज़ी से कुछ-न-कुछ कहानियाँ बनाते रहते हैं। इनमें से कुछ बच्चे तो एक दूसरे की मदद से धीरे-धीरे पढ़ना भी सीख रहे हैं। जो बच्चे थोड़ा पढ़ना जानते हैं वे तेज़ी से सीख रहे हैं और जो ठीक से पढ़ लेते हैं वे उन बच्चों को सिखाते हैं जो अभी ठीक से पढ़ना नहीं जानते। पाठ्यपुस्तक की बजाय पुस्तकालय की किताबों में अच्छे-अच्छे चित्र, कहानियाँ और कविताएँ होती हैं इसलिए वे बच्चों को आकर्षित करती हैं।"


चित्र : दिनेश पटेल


चित्र : दिनेश पटेल

इन तीन स्कूलों का ज़िक्र इसलिए किया क्योंकि इन स्कूलों के बच्चों में एक अलग ही उमंग और उत्साह है। वे अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्वासी हो रहे हैं। इसकी प्रमुख वजह शायद यह रही हो कि औपचारिक रूप से स्कूलों के अनुशासन से इतर बच्चों को लॉकडाउन के बहाने थोड़ी अधिक आज़ादी मिल गई। दूसरी बात यह कि इस तरह की महामारी के दौर में शिक्षक साथियों ने भी बच्चों पर अधिक ज़ोर डालने की बजाय उनकी प्रशंसा की ताकि वे मोहल्ला कक्षाओं में नियमित रूप से आते रहें, और उनका सीखना नियमित रहे। शिक्षकों ने बच्चों को शाबासी दी, हौसला बढ़ाया, और घर-घर जाकर सम्पर्क के ज़रिए मोहल्ला कक्षाओं में आने के लिए बच्चों को प्रेरित भी किया। स्वाभाविक है, ऐसे में बच्चों का जितना भी फ़ायदा हो सकता था हमने मिलकर करने की कोशिश की। हमारी स्कूली व्यवस्था में बच्चों के लिए इस तरह की प्रशंसाओं व शाबासी के लिए फ़िलहाल जो दायरा है उसे और व्यापक बनाने की शायद कोई सम्भावना निकल पाए।

प्राथमिक विद्यालय के एक और शिक्षक बताते हैं, "जितने भी बच्चे मोहल्ला कक्षाओं में आते हैं, सभी को पुस्तकालय की किताबें पढ़ने


चित्र : दिनेश पटेल

में काफ़ी आनन्द आता है। बस स्कूल खुल जाते तो कुछ और चीज़ें सीखने की कोशिश होगी कि कैसे बच्चों को इन किताबों से पढ़ने-लिखने के साथ-साथ अन्य गतिविधियाँ सिखाई जा सकती हैं। बच्चों को इन किताबों की कहानियाँ पढ़ने और चित्र देखने में बहुत मज़ा आता है। इतनी अच्छी और विविधता वाली कविताएँ, कहानियाँ एवं चित्र स्कूल की पाठ्यपुस्तक में नहीं होते, इसलिए भी शायद बच्चों को पढ़ने में मज़ा नहीं आता।"

इन चुनिन्दा अनुभवों से एक बात जो स्पष्ट तौर पर नज़र आती है वो ये कि जहाँ-जहाँ पर शिक्षक साथियों ने बच्चों के प्रति थोड़ी अधिक सक्रियता और सरोकार दिखाया है, वहाँ बच्चों की किताब पढ़ने की आदतें धीरे-धीरे बनने लगी हैं। उक्त उदाहरण यह भी बताते हैं कि अगर नियमित रूप से पढ़ने के लिए इन बच्चों को किताबें उपलब्ध होती रहें तो बच्चे भी ख़ुद से पढ़ना सीखने की ओर अग्रसर होते हैं और बाद में ये एक आदत की तरह से उनकी ज़िन्दगी का एक बेहतरीन और ज़रूरी हिस्सा बन जाता है। कुछ हद तक वे अपने शिक्षक से इसकी माँग करते भी देखे जाते हैं। ख़ासकर ऐसे स्कूलों में जहाँ शिक्षक और बच्चों के बीच का रिश्ता अपेक्षाकृत बेहतर, लचीला और संवेदनशील बन पाया हो। और हम सब भी तो यही चाहते हैं।

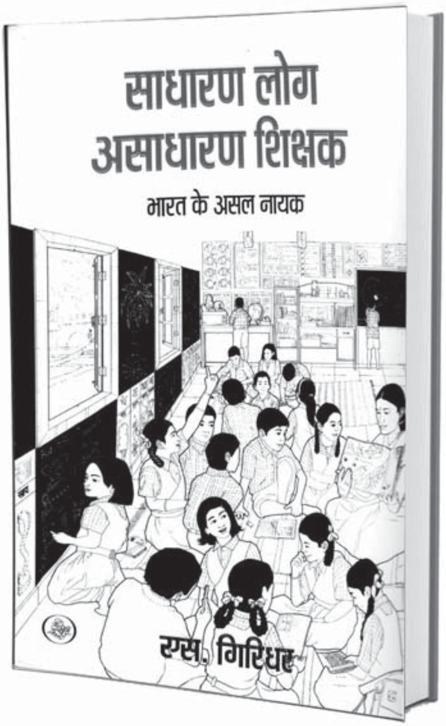
दिनेश पटेल को भाषा, भाषा शिक्षण एवं कला शिक्षा में एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ काम करने का तीन दशक का अनुभव है। छत्तीसगढ़ सरकार के साथ डीएड पाठ्यक्रम निर्माण में सक्रिय सहभागिता। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी। शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर लेखन। शौक़िया चित्रकारी। पिछले ढाई साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, धामनोद, ज़िला धार में हिन्दी भाषा के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : dinesh.patel@azimpremjifoundation.org

शिक्षकों की प्रेरणादायी गाथाएँ कहती एक किताब

निशा नाग

एस गिरिधर द्वारा लिखी गई किताब *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सरकारी यानी पब्लिक स्कूल के उन शिक्षकों के बारे में है जो उनकी देखरेख में आने वाले बच्चों की ज़िन्दगियों को बेहतर बनाने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध हैं। ये वे शिक्षक हैं जो हर सीमा को लाँघने का साहस रखते हैं क्योंकि इनका मानना है कि हर बच्चा सीख सकता है। यह किताब ऐसे जुझारू और प्रेरणादायी शिक्षकों एवं जिस माहौल में वे काम करते हैं उसके बारीक़ अध्ययन से सम्भव हुई है। सं.

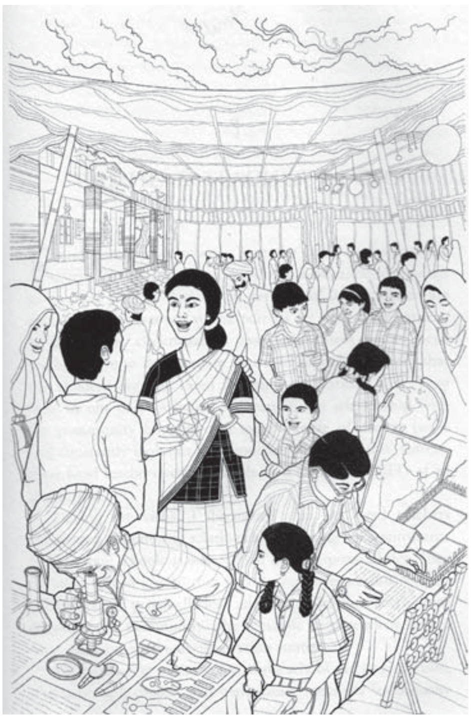


साधारण लोग असाधारण शिक्षक
भारत के असल नायक
लेखक : एस गिरिधर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

अभी हाल ही में ख़बर आई कि सुप्रीम कोर्ट ने शिक्षकों को भी अपने वाहन पर उस तरह का 'लोगो' लगाने की सहमति दे दी है जैसा डॉक्टर या वकील लगाते हैं। लोगो पर लिखा गया है 'राष्ट्र के निर्माता'। एस गिरिधर की पुस्तक *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* इन्हीं राष्ट्र निर्माताओं से साक्षात्कार कराती है जो अनाम लेकिन असल नायक हैं और वे सतत परिश्रम से राष्ट्र निर्माण में सहयोग दे रहे हैं साथ ही तन, मन और धन से अगली पीढ़ी का निर्माण कर रहे हैं। बड़ी बात यह है कि ये नायक उच्च शिक्षण संस्थानों से जुड़े हुए नहीं हैं बल्कि उस नींव को बना रहे हैं जिसपर शिक्षा की इमारत का पूरा ढाँचा खड़ा होता है। सभी शिक्षक ये मानते हैं कि केवल साक्षरता ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है बल्कि उससे बढ़कर शिक्षा व्यक्तित्व निर्माण का औज़ार है।

साधारण लोग असाधारण शिक्षक आँखिन देखी सच की लम्बी श्रृंखला है। गिरिधर का यह निरन्तर प्रयास और परिश्रम उन्हें उन दूर-दराज़ के विद्यालयों की ओर ले गया जहाँ बेसिक सुविधाओं का अभाव, दुर्गम भौगोलिक स्थितियाँ, पिछड़े और हाशियाकृत वर्ग के

विद्यार्थी हैं। "ग्रामीण सरकारी स्कूल बेहद विपरीत परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। इन स्कूलों में सामाजिक-आर्थिक तौर पर सबसे ज़्यादा वंचित बच्चे पढ़ते हैं। इनमें से लगभग 50 फ़ीसदी बच्चे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं जिनके माँ-बाप दिहाड़ी कमाने वाले मज़दूर हैं"। परन्तु शिक्षकों की मेहनत ने रंग लाकर उन्हें अग्रिम पंक्ति में लाने का प्रयास किया है। एक ओर यादगीर, कर्नाटक के परमेश्वरय्या हिरेमठ हैं जो 'ट्रांसफ़ॉर्मर सुधारने से लेकर बच्चों के जीवन में बदलाव लाने का सफ़र' तय कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उत्तरकाशी, उत्तराखंड की रामेश्वरी हैं जो लगातार यह प्रयास करती रहती हैं कि 'हर बच्चा स्कूल की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करे; कि बच्चे एक दूसरे की मदद करें और उनमें सहभागिता की भावना हो'। इस तरह वे पाठ्यक्रम पूरा करने के काम को बच्चों के सामाजिक विकास से जोड़ देती हैं। वे कहती हैं– "संवेदनशीलता, ज़िम्मेदारी, सहभागिता और दूसरों की मदद करने की भावना के अभाव में महज़ पढ़ने, लिखने, गिनती करने या गुणा करने की योग्यता का मेरी नज़र में बहुत महत्त्व नहीं है।... कला, संगीत व सामान्य ज्ञान जैसी पाठ्येतर गतिविधियाँ उनके टाइम टेबल का उतना ही अहम हिस्सा हैं जितना कि पाठ्यक्रम"। सामाजिक सरोकार से जुड़े ऐसे अध्यापक यह जानते हैं कि बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा का विकास होना चाहिए, जिसके लिए शिक्षकों को आवश्यक संसाधन, प्रशिक्षण और वातावरण मिलना चाहिए। इसका दायित्व केन्द्र और राज्य सरकारों पर है। परन्तु ऐसे भी अध्यापक हैं जो संसाधन जुटाने के लिए अपना पैसा ख़र्च करने से भी नहीं हिचकते। उत्तराखंड में पढ़ाने वाले अवनीश का आख्यान है– "पाँच कक्षाओं के 84 बच्चों के लिए वहाँ महज़ दो कमरे थे। उन्होंने और कमरे बनवाने के लिए धन आवण्टित करने के लिए ब्लॉक अधिकारियों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। इस बीच उन्होंने स्कूल के पास ही एक कमरा किराए पर ले लिया। इसके लिए वे अपनी जेब से 1500 रुपए हर महीने लगाते हैं। पिछले चार साल से अवनीश इस कमरे का किराया भर रहे हैं"। ऐसे भी शिक्षक हैं जिन्होंने अपनी जेब से पैसा लगाकर स्कूल में बालिकाओं के लिए शौचालय बनवाया। न केवल यही बल्कि दुर्गम इलाक़ों में बरसात के मौसम में कमर भर कीचड़ से गुज़रकर स्कूल पहुँचने वाली शिक्षिकाओं के साथ ऐसी भी शिक्षिकाएँ हैं जिनका ध्यान इस तरफ़ गया कि लोग निजी स्कूलों में बच्चों को इसलिए भर्ती कराते हैं क्योंकि सरकारी स्कूलों से पहले ही वहाँ शिक्षा प्रारम्भ होती है और एक बार निजी स्कूल में बच्चे के दाख़िले के बाद उसे वहाँ से निकालना मुश्किल होता है। इसलिए वे स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को अपने छोटे भाई-बहनों को भी साथ लाने के लिए प्रेरित करती हैं।



यह पुस्तक इन स्कूलों में कार्यरत, उन कर्मशील अध्यापकों की गाथा कहती है जो पढ़ाने की नई विधियाँ, शिक्षा में गुणवत्ता और मूल्यों के अधिग्रहण आदि पर बल देते हैं। खेलकूद,

विज्ञान, नए प्रयोग, विद्यार्थियों के साथ समूह चर्चा आदि गतिविधियों के माध्यम से छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। इसके साथ ही अध्यापकों के सम्मान का प्रश्न और उनकी मेहनत की स्वीकार्यता दोनों यहाँ मौजूद हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर सुधार और गुणवत्ता के संकल्प, मिशन और उद्देश्य को धारण करने वाले शिक्षकों के प्रयत्न का बखान करती यह पुस्तक भविष्य के उस सूर्योदयी विश्वास को जगाती है जो सबके लिए समान शिक्षा के अधिकार से जुड़ा है। वर्तमान समय में स्कूली शिक्षा के जगत में अनेकानेक पूर्वाग्रह आम आदमी के मानसिक जगत को घेरे हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा पूर्वाग्रह यही है कि निजी यानी पब्लिक स्कूलों में सरकारी स्कूलों के मुक़ाबले बेहतर पढ़ाई होती है, वहाँ का माहौल, अनुशासन, शैक्षिक सुविधाएँ सरकारी स्कूलों से कहीं बढ़-चढ़ कर होती हैं। गिरिधर द्वारा लिखित *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* इस पूर्वाग्रह को तोड़ने का सफल प्रयास है। बाजपुर ब्लॉक, उत्तराखंड के अध्यापक धर्मवीर सिंह चौहान कहते हैं– "स्कूल में बच्चों के नामांकन में साल-दर-साल सुधार ही हुआ है। 2005 में 34 विद्यार्थियों से बढ़कर 2008 में ये 59 हो गया और 2016 में 134, इसके पीछे कठिन परिश्रम और थोड़ी बहुत चतुराई दोनों हैं"। एक अन्य उदाहरण "स्कूल पर एक बड़ा विश्वास दिखाते हुए 67 बच्चों को उनके पालकों ने आसपास के दो निजी स्कूलों से निकालकर तालबपुर प्राइमरी में दाख़िल कर दिया"। वर्तमान समय में परिवर्तन की तीव्र गति के बीच सजग और सतर्क अध्यापक अथक परिश्रम से इस धारणा को बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं और वे सफल भी हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि ये सतत प्रयत्न इस बात का प्रमाण हैं कि मानव शक्ति के उपयोग में किसी भी वर्ग का पिछड़ा रह जाना न तो न्याय संगत है और न ही मानवीय, तब महँगी शिक्षा से वंचित आम जनता के पास एक ही उपाय, सरकारी स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने का बचता है क्योंकि "सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था ध्वस्त हो गई तो फिर शिक्षा के अधिकार की कोई प्रासंगिकता ही नहीं बचेगी।" लेखक ने स्वयं पुस्तक के आमुख में सशक्त दलील देते हुए यह कहा है, "हमें सरकारी स्कूलों का समर्थन क्यों करना चाहिए"। पूरी पुस्तक पाँच अध्यायों में बँटी हुई है– 1. सीईओ की भूमिका में हेड टीचर, 2. विचारशील प्रैक्टिशनर्स : ताउम्र सीखते रहने की प्रतिबद्धता, 3. समता और गुणवत्ता : क्लासरूम में होती है इनकी शुरुआत, 4. सामूहिक कामकाज: एक बड़े लक्ष्य का आकर्षण, 5. नायक : जो किसी रुकावट को नहीं मानते। इन खण्डों में बँटी हुई पुस्तक की ख़ासियत यह भी है कि इसे बिना किसी रुकावट के कहीं से भी पढ़ा जा सकता है। प्रारम्भ में भारत की शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे और स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के आँकड़ों सहित गम्भीर विश्लेषण है तो अन्त में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सीईओ अनुराग बेहार के वक्तव्य 'ये कहानियाँ क्यों कही जानी चाहिए' के माध्यम से इस बृहत् आख्यान कथाओं के कोलाज की सार्थकता को प्रामाणिकता दी गई है।



ये वे अध्यापक हैं, जो कोई काम आदेश से नहीं बल्कि मन की गहराइयों से कर रहे हैं। इन्हीं जननायकों का आख्यान लिए *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* के विषय में एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि यह पुस्तक सुव्यवस्थित रूप से लिखी गई है। पुस्तक के आरम्भ में ही लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार वे इस संस्था से जुड़े। पुस्तक लिखने का उद्देश्य क्या है? क्यों आख्यान में ढालकर इन सच्ची कथाओं को कहा गया है? किस प्रकार से स्कूलों का चयन किया गया है?

एस गिरिधर कहते हैं, "मैंने एक ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के साथ कई दिन गुज़ारे यह समझने के लिए कि उनकी ज़िम्मेदारियाँ, कामकाज की दिनचर्या और तरीक़े क्या हैं?"। एक बड़ी बात ये है कि पुस्तक में हर आख्यान प्रामाणिक है। ग्राफ़, बार चार्ट, कैमरे से खींची गई तस्वीरों के साथ-साथ, तारीख़ें, आरेखन, आभार नोट्स, आँकड़े, सन्दर्भ, संक्षिप्ताक्षरों का परिचय इसे निरन्तर प्रामाणिक बनाता है। लोकेश मालती प्रकाश द्वारा अनूदित एवं गुरबचन सिंह द्वारा सम्पादित *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सटीक अनुवाद का साक्षात् उदाहरण है जहाँ अनूदित भाषा निकटतम पर्यायों द्वारा अनुवाद की नहीं बल्कि मूल भाषा हिन्दी की ही प्रतीत होती है।



यह पुस्तक न केवल पठनीय है अपितु पाठक को एक नया उत्साह भी प्रदान करती है और कुछ करने की प्रेरणा देने के साथ-साथ यह सोचने पर भी विवश करती है कि आर्थिक रूप से सशक्त, पैसा बनाने की मशीन बने निजी स्कूलों के सामने आमजन के स्कूल किस तरह धीरे-धीरे, किन्तु सतत एवं सार्थक प्रयत्नों द्वारा आगे बढ़ रहे हैं।

भारत जैसे बड़े और विविधतापूर्ण देश में शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। यहाँ 'दस लाख से भी ज़्यादा स्कूलों की विशालकाय व जटिल व्यवस्था को चलाने की चुनौती' है, पर साथ ही शिक्षकों के रूप में ऐसे जननायक हैं जो सतत परिश्रम से अपने अध्ययन की कमी को स्वीकारते हुए आगे पढ़ भी रहे हैं और विविध शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग भी ले रहे हैं। शिक्षिकाएँ घर-परिवार के कार्यों के साथ समय पर स्कूल पहुँचने के लिए अपना वाहन चलाना भी सीख रही हैं। अपने स्कूल को श्रेष्ठ बनाने की धुन में और यह दिखाने के लिए, कि उनका स्कूल किसी महँगी फ़ीस वाले निजी स्कूल से कम नहीं, अपनी जेब से पैसा लगाकर एक ओर विद्यार्थियों की यूनिफ़ॉर्म में सुधार कर रहे हैं दूसरी ओर उनके लिए नोटबुक, खेल सामग्री और प्रायोगिक सामग्री जुटा रहे हैं। व्यवस्था की सीमाओं के बावजूद इन शिक्षकों ने किस प्रकार स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों के साथ तालमेल बैठाकर उन्हें विश्वास में लिया है, समुदाय के अलग-अलग तरह के तत्त्वों को एक मंच पर लाने के लिए जी तोड़ मेहनत की है और उनके भरोसे व विश्वास को जीता है इसकी एक से बढ़कर एक गाथाएँ पुस्तक में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त, लगातार फ़ील्ड दौरों के लम्बे अनुभव के बाद लेखक ने कुछ ठोस उपाय भी सुझाए

हैं, जैसे– 'अच्छे पोस्टर तैयार कराए जाएँ और उन्हें जगह-जगह लगाया जाए जो स्कूल की प्रतिबद्धता दिखाते हों; राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय मूल्यांकनों के परिणाम का प्रचार-प्रसार किया जाए; विविध प्रतियोगिताओं के परिणामों को प्रदर्शित किया जाए; शैक्षिक गतिविधियों से जुड़े मेलों का आयोजन और विविध अवसरों एवं सुबह की सभा देखने के लिए समुदाय को भी आमंत्रित किया जाए, साथ ही यह बताया जाए कि कक्षाओं, पुस्तकालय, बग़ीचे, रसोई और शौचालय का रख-रखाव किस तरह किया जाता है'। यही वह मार्ग है जिसके द्वारा सबके लिए समान, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध हो सकती है। *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सधे हुए ढंग से अपनी बात आम जन तक पहुँचाती है। इसकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि इतने गम्भीर विषय को लेकर लिखी जाने के बावजूद पूरी पुस्तक कहीं भी नीरस नहीं हो पाई है। इस सटीक प्रयास के लिए एस गिरिधर को साधुवाद।

डॉ. निशा नाग हिन्दी में एमफिल, पीएचडी हैं। विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में आपकी समीक्षाएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं जहाँ वे पिछले 23 वर्षों से अध्यापन कर रही हैं।
सम्पर्क : nishanagpurohit@gmail.com

विषय की गहरी समझ और बच्चों के साथ मानवीय रिश्ते से बनते हैं अच्छे शिक्षक

शिक्षक सुभाष यादव से सिद्धार्थ कुमार जैन की बातचीत



सिद्धार्थ जैन : साथियों, आज हमारे साथ शिक्षक सुभाष यादव हैं, जो मध्य प्रदेश के धार ज़िले की शासकीय एकीकृत माध्यमिक शाला कागदीपुरा में 2012 से पढ़ा रहे हैं। आप अपने इलाक़े में लम्बे समय से आदिवासी बच्चों के बीच बेहतर काम करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा मक़सद ऐसे शिक्षकों के अनुभवों व विचारों को सुनना, समझना और साझा करना है, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले अन्य शिक्षक साथी भी उनके प्रयासों से अवगत हो सकें।

सुभाषजी, बातचीत शुरू करते हैं, अपने बारे में कुछ बताएँ।

सुभाष यादव : मैं नालछा नाम के एक छोटे-से कस्बे का निवासी हूँ। मेरे पापा शिक्षक थे। उनका ट्रान्सफ़र नालछा से क़रीब अस्सी किलोमीटर दूर धरमपुरी विकासखण्ड के गाँव कोठड़ा हो गया। मैं बचपन में थोड़ा शरारती था इसलिए मम्मी ने मुझे पापा के पास कोठड़ा भेज दिया। वहाँ मैं पापा के स्कूल में दाख़िल हो गया और रोज़ाना चार किलोमीटर पैदल चलकर स्कूल जाता था। पापा बहुत मिलनसार थे। कोठड़ा एक आदिवासी बहुल गाँव था तो वह लोगों से अकसर मिलते-जुलते थे। उन्हीं दिनों मेरे मन में शिक्षक बनने का विचार आया। मुझे लगा कि शिक्षक कितनी अच्छी बातें करते हैं, लोग उनकी कितनी इज़्ज़त करते हैं! मैं वहाँ क़रीब एक साल रहा और जब चौथी कक्षा में आया तो मम्मी का स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा। हम वापस अपने गाँव आ गए। दुर्भाग्य से एक वर्ष के अन्दर पापा की मृत्यु हो गई। पढ़ने की बहुत इच्छा थी। मज़दूरी करते हुए ग्यारहवीं कक्षा तक पढ़ाई कर ली। बग़ैर कोचिंग के हायर सेकेंडरी बोर्ड इम्तेहान में फ़र्स्ट क्लास से पास हुआ। उस दौरान एक बार एक शिक्षक ने 'शहीद' शब्द का प्रयोग किया और उसकी व्याख्या में कहा कि जो देश के लिए काम करते-करते काल के गाल में समा जाते हैं, उन्हें 'शहीद' कहा जाता है। यह 'शहीद' शब्द मेरे मन में बैठ गया। मुझे लगा कि

ऐसा ही कोई काम करना चाहिए अपने देश के लिए। इसके बाद शिक्षक बनने की जो बात थी उसकी जगह पर सेना में भर्ती होने का भाव मेरे मन में आ गया। फिर मैं बीएसएफ़ में भर्ती हो गया। पर वहाँ जो माहौल था, वह मेरे घर के माहौल से बहुत ही अलग था। फिर शिक्षक के पद के लिए आवेदन किया तो मेरी भर्ती हो गई और मैं एक शिक्षक के रूप में कार्य करने लगा।

सिद्धार्थ जैन : सुभाषजी, जैसा कि आपने कहा आपकी भर्ती सेना में हो गई थी और फिर आप शिक्षक बन गए। तो आपने शिक्षण का कार्य क्यों चुना? इस बारे में थोड़ा बताएँ।

सुभाष यादव : शुरू में तो शिक्षक बनने का ही विचार था, क्योंकि मैं अपने पिता की तरह एक शिक्षक ही बनना चाहता था। शिक्षक की बड़ी इज़्ज़त होती है, बच्चों को पढ़ाने का मौक़ा मिलता है, जब उनके घर जाते हैं तो वहाँ भी बड़ा मान-सम्मान मिलता है। हमने सोचा क्यों न शिक्षक का कार्य ही अपनाया जाए और फिर मैं इस पेशे में आ गया।



सिद्धार्थ जैन : पिछले बीस साल से आप शिक्षकीय पेश में हैं। कैसा महसूस करते हैं एक शिक्षक के रूप में?

सुभाष यादव : मैं रात में सोता हूँ, तब भी मुझे स्कूल और बच्चों के ख़्याल आते हैं। कहीं जाता हूँ, दोस्तों के साथ भी रहता हूँ तो वही ख़्याल आता है कि अपने कार्य में क्या और करना है। जैसे, कोरोना काल में मैंने एक व्हाट्सएप ग्रुप बनाया, जिसमें बच्चों के माता-पिता को शामिल किया। बच्चों को यह बहुत पसन्द आया। मैंने भी कई नई बातें सीखीं। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की कि हम अपने-अपने घरों में क़ैद रहते हुए भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, बच्चों की पढ़ाई की फ़िक्र कर रहे हैं। माता-पिता से मिलने वाला प्रेम बहुत अभिभूत करता है। मुझे बच्चों के साथ रहना बहुत अच्छा लगता है। एक नई शक्ति, नया सुकून मिलता है।

सिद्धार्थ जैन : आपकी नज़र में एक बेहतर शिक्षक कैसा होता है, उसे आप किस रूप में देखते हैं?

सुभाष यादव : एक बेहतर शिक्षक का आत्मविश्वास बहुत मज़बूत होना चाहिए। जैसे, कोई शिक्षक यदि किसी विषय को पच्चीस बच्चों को पढ़ा रहा है तो उसमें यह विश्वास होना चाहिए कि वह बच्चों को यह अवधारणा पढ़ाने और समझाने का भरपूर प्रयत्न करेगा। एक बेहतर शिक्षक को विषय और इसे पढ़ाने की अच्छी समझ होनी चाहिए। उसका बच्चों के प्रति स्नेह और मानवीयता का भाव होना चाहिए। उसका चरित्र और कर्तव्यनिष्ठा का भाव बहुत गहरा होना चाहिए। लोग कहते हैं कि आज के समाज में शिक्षक का आदर नहीं होता, पर मेरा तो अनुभव है कि आज भी लोग शिक्षक का सम्मान करते हैं। अधिकतर अभिभावक छोटे किसान हैं और जब मैं स्कूल से लौटता हूँ, मुझे अपने घरों में पकाया हुआ भोजन तो कभी भुट्टे, सब्ज़ी, वग़ैरह देते हैं। मैं कहता हूँ कि इसका मूल्य देकर ही लूँगा। वे मन में इतनी गहरी भावना और स्नेह रखते हैं कि उनका प्रेम भीतर तक छू जाता है, और अभिभूत कर देता है। शिक्षक के पास समय ही होता है और उसे समय दान करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

सिद्धार्थ जैन : आप अपनी कक्षा के भीतर किस तरह का वातावरण निर्मित करते हैं, जिससे पढ़ाने में मदद मिलती है?

सुभाष यादव : मैंने कक्षा में पाँच कोने बनाए हैं। एक गणित का कोना है, एक भाषा का है, जिसमें अँग्रेज़ी और हिन्दी दोनों शामिल हैं। मैं किसी भाषा को, वर्ण को एक प्रकार से नहीं, अलग-अलग प्रकार से पढ़ाता हूँ। जैसे, यह नहीं कि वर्ण मैंने बोर्ड पर ही लिख दिए। बच्चों को मिट्टी पसन्द है, रेत, बोर्ड पसन्द है, तो मैं वर्णमाला सिखाने के लिए, हिन्दी की हो या अँग्रेज़ी की, सभी माध्यमों का उपयोग करता हूँ।

बच्चों को मिट्टी अच्छी लगती है, रेत अच्छी लगती है। इसलिए जो बच्चों को अच्छा लगता है, उस तरह से पढ़ाने की कोशिश करता हूँ। बच्चों को कट आउट से खेलना अच्छा लगता है। मिट्टी भी है, रेत है, कट आउट हैं, कार्ड हैं, उनके मॉडल हैं, ब्लैकबोर्ड भी हैं। भाषा के बाद मैं गणित को लेता हूँ। बच्चों को गणित में मज़ा तब आता है जब उन्हें समझ में आए, और मैं उनको समझाने के लिए कई उपाय करता हूँ। सरल से कठिन की तरफ़ जाता हूँ और स्वनिर्मित शिक्षण सामग्री काम में लाता हूँ। विषय के लिए ज़रूरी है कि बच्चों को समझा जाए। दूसरे शिक्षक भी मेहनत करते हैं, और पूछते हैं कि मैंने ऐसा क्या किया कि बच्चा समझ गया। मैं बताता हूँ कि मैं विषय के साथ बच्चों को भी समझता हूँ। बच्चों की समझ के स्तर पर जाना पड़ता है। मैं तो बच्चों के बीच बैठकर उन्हें समझाने का प्रयास करता हूँ। कुछ दिन पहले ही मुझे बच्चों को एएम और पीएम का अर्थ समझाने में पूरा दिन लग गया। लेकिन मैंने देखा कि शाम तक वे समझ गए। अब वे अपने बोलचाल में उसका उपयोग भी करने लगे हैं। मुझे बहुत सन्तोष हुआ। तो मैं हर को चीज़ को मॉडल के रूप में समझाने की कोशिश करता हूँ।



एक है 'मेरा अपना कोना', और उस कोने में बच्चे जो चाहें रख सकते हैं। वो चाहें तो चित्र रख दें, मिट्टी के खिलौने बनाकर रख दें। पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों के लिए खिलौने ही रखता हूँ कि बच्चा बस खेले। जो चाहे वह खेले। कविता बोले। एक बार साढ़े पाँच या छह साल की एक बच्ची के घर से उसे कोई बुलाने आया क्योंकि घर में कोई पूजन कार्यक्रम था। पर बच्ची ने मना कर दिया क्योंकि उसे स्कूल में काफ़ी मज़ा आ रहा था। बच्चे क्लास में कुछ तोड़ते-फोड़ते हैं तो मैं कभी भी मना नहीं करता, बस बाद में इस बारे में उनसे बातचीत का प्रयास ज़रूर करता हूँ।

सिद्धार्थ जैन : बहुत अच्छी बात कही आपने। बच्चों के साथ रिश्ते जितने प्रगाढ़ होंगे, शिक्षा के काम को आगे ले जाने में हमें उतनी ही आसानी होगी। मैं जानना चाहता हूँ कि एक शिक्षक के रूप में आप शिक्षण कार्य की तैयारी किस तरह से करते हैं? शिक्षण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए सभी काम किस तरह कर पाते हैं? कब समय मिल पाता है आपको?

सुभाष यादव : मैं सारे काम घर पर ही करता हूँ। स्कूल से पन्द्रह मिनट में घर पहुँचकर चाय पीता हूँ, और कम्प्यूटर पर बैठ जाता हूँ। अगले दिन की सारी योजना बनता हूँ। फिर हर योजना के प्रिंटआउट लेता हूँ, और उन्हें एक जगह चिपकाता हूँ। मैंने देखा कि जब हम कोई काम शुरू करते हैं तो उसके बारे में नए-नए विचार अपने-आप आने लगते हैं। ये अकसर आकस्मिक और आश्चर्यजनक

रूप से आते हैं। अब तो मैंने पचास इंच की एक टीवी ले ली है। घर पर किया हुआ काम एक पेन ड्राइव में ले जाता हूँ, फिर अपनी स्मार्ट क्लास में टीवी के माध्यम से और छोटे बच्चों को खिलौनों के माध्यम से समझाता हूँ।

सिद्धार्थ जैन : ये सारे संसाधन आप कैसे जुटा पाए?

सुभाष यादव : कुछ जन सहयोग भी लिया हमने, और हमारे कुछ अधिकारियों का भी सहयोग मिला। अभी हाल ही में एक बड़े अधिकारी आए। यदि कोई काम करता है तो उसके मन में डर नहीं रहता। उनके आते ही मैं उनसे बातें करने लगा। उन्हें भी आश्चर्य हुआ। मैंने उन्हें एक अबैकस दिखाया जो कबाड़ से बनाया था। उस अबैकस की मदद से बच्चे बड़ी संख्या भी आसानी से लिख लेते हैं।

कभी बच्चे ही शिक्षक भी बन जाते हैं। शिक्षण कार्य सुगमता से चले, इसके लिए पाँच-पाँच बच्चों के समूह बनाए हैं। उन पाँच बच्चों में एक लीडर रहता है जो बाक़ी बच्चों को पढ़ाता है। मैं लीडर को समझाता हूँ और वे बाक़ी बच्चों को समझाते हैं, उन्हीं की भाषा में। हमारे यहाँ जो भाषा चलती है, उसमें गुजराती का थोड़ा मिश्रण रहता है। वे दो को 'बे', तीन को 'ताण' और चार को 'सार' कहते हैं। मुझे इस भाषा को इस्तेमाल करने में थोड़ी दिक़्क़त ज़रूर आती है। मैं ये चीज़ें उन बच्चों से समझता हूँ कि तुम्हारी भाषा में इसको क्या कहते हैं, वग़ैरह-वग़ैरह। बड़े बच्चों से सीखकर मैं बाक़ी बच्चों तक पहुँचता हूँ। बच्चों को समझाने के लिए मैं बच्चों का सहयोग ही ज़्यादा लेता हूँ।

सिद्धार्थ जैन : यह आपने बताया कि आप ग्रामीण और आदिवासी बच्चों की भाषा सीखकर उसके ज़रिए उन तक पहुँचते हैं। और क्या करते हैं कि उनकी भाषा का उपयोग शिक्षा में किसी हद तक हो पाए?

सुभाष यादव : हमारी अभिभावकों के साथ बैठक होती है, और मैं अभिभावकों के साथ बच्चों की आदतों वग़ैरह के बारे में बातें करता हूँ। वे अनुपस्थित क्यों होते हैं, यह पूछता हूँ। जो बच्चे हमारे यहाँ से निकलकर कॉलेज पहुँच गए, उनका भी सहयोग लेता हूँ। परिवार के लोगों से स्थानीय भाषा में बात करने से ज़्यादा निकटता महसूस होती है और वे भी स्कूल से अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं।

सिद्धार्थ जैन : हमारे ग्रामीण, आदिवासी अंचलों की अपनी एक अलग भाषा है और पाठ्यपुस्तक की अलग। आप दोनों के बीच तालमेल कैसे बैठा पाते हैं?

सुभाष यादव : अकसर कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो पाठ्यपुस्तक में होते हैं, पर बच्चों की भाषा में नहीं। ऐसे में उनके पर्याय ढूँढ़ता हूँ, फिर भी न समझ आएँ तो उनके चित्र बनाता हूँ और उनके माध्यम से समझाने की कोशिश करता हूँ।

सिद्धार्थ जैन : इसके एक या दो उदाहरण दे सकते हैं?

सुभाष यादव : जैसे 'रोटी' शब्द उनकी भाषा में नहीं है। इसके लिए उनके पास 'रोटला' शब्द है। फिर उनको बताते हैं कि 'रोटला' के लिए आम भाषा में 'रोटी' शब्द है। ऐसे बहुत सारे शब्द होते हैं जो मुझे भी अटपटे लगते हैं। ऐसे में, मैं बड़े बच्चों का सहयोग लेता हूँ। मैंने देखा है कि यदि बच्चा आपकी बात को समझता है, तो आप पर भरोसा भी करने लगता है। यदि वह प्रश्न कर रहा है या आपके प्रश्नों का उत्तर दे रहा है, इसका मतलब ही यह है कि वह आपकी बात समझ रहा है।

बच्चों को प्रश्न करने की आदत होनी चाहिए। यदि वह प्रश्न उठा रहा है तो इसका अर्थ है कि वह आपसे जुड़ा हुआ है और आपकी बात को ग्रहण कर रहा है। यदि सवाल नहीं करता तो मैं बड़े बच्चे को बुलाता हूँ, जो एक दुभाषिए का काम करते हुए मेरी बात उस बच्चे तक पहुँचाता है। इस प्रक्रिया में, मैं ख़ुद उस भाषा की बारीक़ियाँ समझने लगता हूँ।

सिद्धार्थ जैन : सुभाषजी, आपके स्कूल में 132 बच्चे हो गए हैं और माध्यमिक स्कूल भी उसी परिसर में है। आप एक प्रधानाध्यपक भी हैं। आप किस तरह ये सभी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हैं?

सुभाष यादव : मैंने समुदाय का सहयोग लिया है। हमारे स्कूलों में शिक्षक कम और बच्चे ज़्यादा होते हैं। एक क्लास में हमारे यहाँ पच्चीस बच्चे हैं। मैंने पहले वहाँ ग्रुप लीडर बनाए। शिक्षक बच्चों को अलग-अलग ग्रेड दे देते हैं– 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' और 'ई'। अब ये बच्चों के ग्रेड नहीं हैं, टीचर्स ने इन्हें अपनी सुविधा से बना लिया है, क्योंकि वे जिन बच्चों तक नहीं पहुँच पाए उन्हें 'डी' और 'ई' ग्रेड दे दिए। मैं देखता हूँ कि ये 'डी' और 'ई' वाले बच्चे ही कभी-कभी 'ए', 'बी' और 'सी' वाले बच्चों से काफ़ी आगे निकल जाते हैं। ये तो कक्षा के भीतर के काम हुए, पर अब बाहर के भी काम हैं, जैसे– बग़ीचे तैयार करवाना, आदि। हमारा गाँव इतना ईमानदार है कि अगर कोई सामान बाहर भी रखा हुआ है, तो वह कहीं नहीं जाएगा। गाँव वाले हमारे साथ हर प्रकार का सहयोग करते हैं। हमारा गाँव बहुत ज़्यादा ग़रीब है, पर वहाँ के मज़दूर भी हमारा सहयोग करते हैं। कोई कार्यक्रम होता है तो वे पूरा सहयोग करते हुए ख़ुद से आकर काम करते हैं।

सिद्धार्थ जैन : हर बच्चा सीख पा रहा है, इसको आप कैसे सुनिश्चित करते हैं? हर बच्चा सीखे यह एक बड़ी चुनौती है। इसके साथ आकलन और मूल्यांकन का प्रश्न आता है। इस दिशा में आप कैसे कार्य करते हैं?

सुभाष यादव : वैसे तो बीच-बीच में पढ़ाई के दौरान मैं बच्चों से सवाल पूछता रहता हूँ। बेसलाइन टेस्ट से बच्चे की सीख का आकलन हो पाता है। यदि किसी बच्चे को समझने में दिक़्क़त होती है तो हम उसे अलग-अलग तरीक़ों से समझाने की कोशिश करते हैं।

सिद्धार्थ जैन : आप लम्बे समय से आदिवासी इलाक़ों में शिक्षा की स्थिति से वाक़िफ़ हैं। समुदाय में बालिकाओं की शिक्षा को आप कैसे देखते हैं?

सुभाष यादव : कागदीपुरा के पहले मैं आले गाँव में था। वहाँ के 55 बच्चे जवाहर नवोदय विद्यालय में चयनित हुए थे। कागदीपुरा में जब मैंने इस संस्था को ज्वाइन किया, इसे एक चुनौती के रूप में लिया। आले गाँव में एक मोहल्ला था, वहाँ की लड़कियाँ हमारे स्कूल में नहीं आती थीं। हमने सोचा ऐसा क्या करना चाहिए कि लड़कियाँ हमारे स्कूल में आएँ? मैं सहायक आयुक्त (ट्राइबल) के पास गया और उनसे अनुरोध किया कि मैं एक बालिका मेला आयोजित करना चाहता हूँ और ब्लॉक में जितने भी प्राइमरी स्कूल हैं, वहाँ से पाँच-पाँच बालिकाएँ शिक्षकों के साथ इस मेले में आएँ। उस मेले में मैंने भोजन आदि की भी व्यवस्था की थी। बच्चे इतने प्रसन्न हुए कि कई बालिकाओं ने वहीं फ़ैसला किया कि वे स्कूल में दाख़िला लेंगी। मैंने समझा कि जब तक हम किसी काम में बच्चों को शामिल नहीं करेंगे तब तक सफलता नहीं मिलेगी। किसी भी तरह के काम में समुदाय को जोड़ना ज़रूरी है। हमारे कागदीपुरा में एक भी बच्चा ऐसा नहीं जो स्कूल नहीं आ रहा हो।



कागदीपुरा में हम कुछ मेले आयोजित करते हैं। यहाँ बालकों और बालिकाओं की संख्या बराबर है। सौ फ़ीसदी बालिकाएँ हमारे विद्यालय में पढ़ रही हैं। हम उनपर इतना ध्यान देते हैं कि कभी-कभी तो बालकों को ईर्ष्या होने लगती है।

दरअसल, बालिकाएँ ध्यान देकर ईमानदारी से पढ़ती हैं।

सिद्धार्थ जैन : सुभाषजी, आपने बच्चों, समुदाय को शामिल करने की जो बातें बताईं, वे बड़ी दिलचस्प थीं। और ऐसी कौन-कौन सी बातें हैं, जो आपको लगातार ऊर्जा देती व प्रेरित करती हैं?

सुभाष यादव : बच्चे बहुत प्रेम देते हैं यहाँ। ऐसा प्रेम कभी-कभी घर वाले भी नहीं दे पाते। मैं भाव विह्वल हो जाता हूँ। जब भी गाँव में कोई बड़ी घटना हो जाए, मैं उनके दुःख-सुख में शामिल होकर पूरी उपस्थिति ज़रूर देता हूँ, और जब बाहर वाले यह देखते हैं तो उनको आश्चर्य भी होता है। मैं उन सभी से इतना जुड़ गया हूँ मानो हम एक ही परिवार के हों।

सिद्धार्थ जैन : ये सबकुछ आप जो कर रहे हैं, इसमें कई सारी चुनौतियाँ भी सामने आती होंगी। आप कैसे इन चुनौतियों का सामना करते हुए अपने काम को आगे बढ़ाते हैं?

सुभाष यादव : चुनौतियाँ तो बहुत आईं। कभी-कभी तो ऐसी भी स्थितियाँ आईं कि रुलाई फूट गई। पर मैं कभी डरा नहीं। मुझे भय नहीं लगता। कभी-कभी ऐसी स्थिति बनती है कि अधिकारियों से भी मुझे अपमानित होना पड़ता है, कभी बच्चों के अभिभावक भी नाराज़ हो जाते हैं, अपशब्द भी बोलते हैं, लेकिन मैंने कभी उनका अपमान नहीं किया। हालाँकि बाद में वही अभिभावक माफ़ी भी माँग लेते हैं।

अधिकारी कहते हैं कि आप तो अपनी मर्ज़ी से चल रहे हैं, जबकि हमारे नियम ऐसे नहीं हैं। मैं कहता हूँ कि बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ रही है और यही हमारा मक़सद होना चाहिए। मीटिंगों में हमारे संकुल के आसपास के अन्य टीचर्स भी नाराज़ होते हैं। कई तरह की बातें उठाते हैं, तो बुरा लगता है। परिवार वाले भी नाराज़ होते हैं कि दिनभर तो आप स्कूल में लगे रहते हैं और घर आकर कम्प्यूटर पर बैठ जाते हैं। पर मैं विचलित नहीं होता।

बचपन में शहीद होने का जो भाव मेरे मन में आया था उसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम फ़ौज में रहकर, बॉर्डर पर लड़कर ही शहीद हो सकते हैं। आप जो भी काम कर रहे हैं उसी में इतने मगन हो जाएँ, डूब जाएँ कि लोग उस काम के लिए आपको महत्त्व और ज़्यादा इज़्ज़त दें। वैसे शिक्षा कर्म में चुनौतियाँ तो बहुत आती हैं, पर मैं घबराता नहीं, न ही कभी घबराऊँगा, और आने वाले समय में भी आगे बढ़ता जाऊँगा।

सिद्धार्थ : शुक्रिया सुभाषजी, *पाठशाला* हेतु अपने अनुभव साझा करने के लिए।

सभी चित्र : सुभाष यादव

सुभाष यादव, मध्य प्रदेश के धार ज़िले की शासकीय एकीकृत माध्यमिक शाला, कागदीपुरा विकासखण्ड नालछा में 2012 से पढ़ा रहे हैं। आप लम्बे समय से आदिवासी बच्चों के बीच बेहतर काम करने का प्रयास कर रहे हैं। विद्यालयीन गतिविधियों में उत्कृष्ट कार्य के लिए जाने जाते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में भाषा व गणित शिक्षण को बाल केन्द्रित और आकर्षक बनाने के लिए सतत प्रयासरत हैं। आपकी बच्चों के साथ बातचीत करने और उन्हें समझने में गहरी रुचि है।

सम्पर्क : subhashyadavnalchha@gmail.com

सिद्धार्थ कुमार जैन विगत तीन दशक से सामाजिक एवं अनौपचारिक / औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में सतत सक्रिय हैं। समाज कार्य, जनसंचार एवं भाषा अध्ययन की पढ़ाई की है। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल (मध्यप्रदेश) में सन् 2013 से कार्यरत हैं। इससे पहले आप दो दशक तक राज्य शिक्षा केन्द्र, मध्य प्रदेश एवं जन शिक्षण संस्थान, उज्जैन से जुड़े रहे। साहित्य निर्माण, शिक्षण प्रशिक्षण सामग्री निर्माण, व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में आपका विशेष योगदान रहा है। नियमित तौर पर शिक्षा, पर्यावरण एवं सामाजिक पहलुओं पर देश के विभिन्न अख़बारों / पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं।

सम्पर्क : siddharth.jain@azimpremjifoundation.org

साथ-साथ सीखना हर बच्चे को आत्मविश्वास देता है

पाठशाला के हर अंक के लिए हम शिक्षा के किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर संवाद आयोजित करते हैं और बातचीत के विवरण को पत्रिका में प्रकाशित करते हैं। इस अंक के लिए संवाद श्रृंखला की सातवीं परिचर्चा पीयर लर्निंग यानी साथ-साथ सीखना विषय पर आधारित थी, जिसमें 'साथ-साथ सीखने' के बहुआयामी पहलुओं पर विस्तार से बातचीत की गई। यह परिचर्चा वेबिनार के रूप में आयोजित की गई, जिसका ब्योरा पाठकों के लिए प्रस्तुत है। सं.

रजनी : नमस्ते। *पाठशाला* द्वारा आयोजित इस संवाद में आप सभी का स्वागत है। आज की बातचीत का विषय है 'पीयर लर्निंग' जिसे हम 'साथ-साथ सीखना' भी कहते हैं। अकसर बात की जाती है कि बच्चे एक दूसरे से सीखते हैं और यह कि बच्चे अपने दोस्तों की बातों को जल्दी समझते और मान भी जाते हैं, उनके साथ ग़लतियों के बारे में बातचीत भी करना चाहते हैं। इस तरह उनके सीखने की प्रक्रिया सहज भी हो जाती है।

आज के संवाद में हम बात करेंगे कि बच्चों के एक दूसरे से सीखने के क्या-क्या उदाहरण हम स्कूल और कक्षा में देखते हैं। कक्षाओं में मॉनीटर भी होते हैं। क्या मॉनीटर भी अपने साथियों को सीखने में मदद कर सकते हैं? क्या इसे भी हम सहयोगी सीखना कहेंगे? बच्चे समूह में काम करते हुए सीखें, यह भी बात होती रहती है। क्या समूह में सीखना भी साथ-साथ सीखने की अवधारणा पर ही आधारित है? और यह भी महत्त्वपूर्ण है कि समूह हम किन आधारों पर बनाएँ? एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सहयोगी सीखने में क्या सिर्फ़ बच्चों को, उनके मित्रों को ही एक दूसरे का सहयोगी मानें, या शिक्षक भी विद्यार्थियों के सहयोगी बनकर उनके सीखने की प्रक्रिया में मदद कर सकते हैं? अगर शिक्षकों को विद्यार्थियों के दोस्त मानते हैं तो इन शिक्षकों को, उनकी भूमिका को कैसे देखें? शिक्षक एवं बच्चे मिलकर साथ-साथ सीखें, इसकी क्या शर्तें हो सकती हैं? इन कुछ मुद्दों पर इस संवाद में बातचीत करेंगे।

इस संवाद में हमारे साथ अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर से अमित शर्मा और राजकीय प्राथमिक शाला बमबाला, सांगानेर, जयपुर से पूनम भाटियाजी हैं। राजकीय प्राथमिक शाला जामनाड, बेमेतरा से सावित्रीजी हैं और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बेमेतरा से हमारे साथ श्वेता भी हैं। एकलव्य, भोपाल से युगल किशोरजी और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, अल्मोड़ा से लोकेश हैं।

पूनमजी, आप अपनी बात रखें।

पूनम भाटिया : मेरा मानना है कि हम पैदाइश के साथ ही सीखना शुरू कर देते हैं। जिस तरह से हम बड़ों को साथी की आवश्यकता होती है उसी तरह प्रत्येक बच्चे को भी साथी की ज़रूरत होती है। सीखने के नियमों में एक नियम यह भी है कि हम एक दूसरे के साथ में सीखते हैं। जब भी हम आपस में बातचीत या चर्चा करते

हैं, मित्रता करते हैं, उठते-बैठते हैं, साथ-साथ काम करते हैं तब चाहते या न चाहते हुए भी बहुत सारे विचार एक दूसरे को सिखा देते हैं।

समूह किस आधार पर बनने चाहिए, समूह शिक्षण स्थाई या अस्थाई किस रूप में होना चाहिए, साथ ही समूह शिक्षण कितना लाभकारी हो पाता है, इसपर अब मैं बात रखूँगी। कोविड महामारी ने यह गहनता से सिखा दिया है कि ऑनलाइन शिक्षा परिपूर्ण नहीं है। बच्चे कक्षा में जो सीखते हैं वही पूर्ण शिक्षण है। विद्यालयी शिक्षा में एक साथ रहना, कक्षा में साथ-साथ बैठना, प्रार्थना करना, खेलना, पुस्तकालय में एक साथ बैठना, पौधारोपण, मॉनीटरिंग, साथ में खाना खाना, भोजन की व्यवस्था को सँभालना और ऐसी कई गतिविधियों में सम्मिलित होना महत्त्वपूर्ण है।

समूह स्थाई हो या अस्थाई, यह इसपर निर्भर करता है कि समूह किस कार्य के लिए बन रहे हैं? जैसे– कुछ सीखने के लिए या किसी विषय पर बोलने अथवा किसी कार्य को करने के लिए, आदि। जब छोटी अवधि के लिए कोई कार्य कर रहे हैं, यानी किसी एक लर्निंग आउटकम को लेकर तो एक लर्निंग आउटकम पर काम होने के बाद समूह बदला जा सकता है। अतः इस अनुरूप जिस समूह का निर्माण होगा वह स्थाई नहीं होगा। स्तर के अनुरूप भी समूह का निर्माण कर सकते हैं। यहाँ यह रेखांकित कर दूँ कि किसी भी बच्चे को बहुत अच्छा या कमतर नहीं आँक सकते, क्योंकि किसी विषय या अवधारणा पर बच्चों की समझ एक दूसरे से फ़र्क़ होने के पीछे कई कारण हो सकते हैं। जैसे– किसी छात्र ने विद्यालय में देरी से प्रवेश लिया हो, या उसके घर में कोई दुर्घटना हुई हो, या स्थानान्तरण की वजह से उसे किसी अन्य विद्यालय में जाना पड़ा हो, आदि। ऐसे में हमें बच्चों के स्तर के अनुरूप समूहों का निर्माण करना पड़ेगा जो कुछ समय के लिए स्थाई हो सकते हैं।

बहुधा ऐसे विद्यालय भी होते हैं जिनमें एक ही शिक्षक कई विषय पढ़ा रहा होता है। ऐसी स्थिति में भी हमें समूह बनाने पड़ते हैं। यदि किसी विद्यार्थी की रुचि गणित विषय में है तो वह गणित समूह का नेतृत्व कर सकता है, इसी तरह भाषा और विज्ञान में दिलचस्पी रखने वाले विद्यार्थी भी अपने समूह में सीख और सिखा सकते हैं।

बच्चों के अनुभव, दक्षता के अनुसार भी समूह बन सकते हैं। जैसे– किसी विद्यार्थी के पिताजी गाड़ियाँ ठीक करते हैं और बच्चा सुबह-शाम पिताजी को काम करते हुए देखता है। वह इस सन्दर्भ से जुड़ी अवधारणाएँ बच्चों को सिखाने में मदद कर सकता है। इसी तरह कृषक वर्ग से आने वाले बच्चे कृषि के बारे में, नापतौल के बारे में अन्य बच्चों से बातचीत कर सकते हैं। हो सकता है ऐसे बच्चे अन्य गतिविधियों में परफ़ेक्ट न हों, पर जो कार्य वो रोज़ करते हैं या होते हुए देखते हैं उसमें वे समझ ज़रूर रखते होंगे। समूह किसी भी आधार पर बनाएँ लेकिन मूल बात यह है कि समूह के माध्यम से जो दक्षता विकसित करना चाहते हैं उसमें यह मददगार हों। जब भी समूह बनाएँ उससे पहले शिक्षक के पास यह ख़ाका ज़रूर हो कि गतिविधि क्या और कैसे होगी, बच्चे क्या करेंगे और वह स्वयं क्या करेंगे, जिससे विद्यालय में शिक्षण का स्तर कभी भी कमतर न हो पाए और वो अपने क्षेत्र से भटके भी नहीं।



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

मेरा मानना है कि समूहों में एक साथ बैठकर कार्य करने की क्षमता छोटे बच्चों के साथ जल्दी और ज़्यादा विकसित हो पाती है। कक्षा 1 से 5 के बच्चे इसमें ज़्यादा कार्य कर पाते हैं। कक्षा 6 से आगे के बच्चों के साथ चर्चा कर ज़्यादा कार्य कर सकते हैं।

रजनी : कुछ बातें रेखांकित करूँगी। जैसे ही बच्चा 8-9 महीने का हो जाता है उसको उसके साथ बात करने, खेलने वाले साथी की ज़रूरत महसूस होती है और उनके साथ में खेलने से वे नई चीज़ें सीखते भी हैं। हम वयस्क भी अपने साथियों से बहुत कुछ सीखते हैं। यह कह सकते हैं कि शायद इंसानी प्रकृति का ही हिस्सा है कि हमें साथ-साथ सीखना अच्छा लगता है। दूसरी बात, सीखना-सिखाना सिर्फ़ अकादमिक चीज़ों या विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है, बच्चे साथ-साथ रहते हुए बहुत सारी चीज़ें पढ़ने-लिखने के इतर भी सीखते हैं। यह भी कि साथ-साथ सीखना हर बच्चे को एक आत्मविश्वास देता है कि उसको भी बहुत कुछ आता है जो वह दोस्तों के साथ साझा कर सकता है।

अमित, आप अपनी बात रखें।

अमित शर्मा : औपचारिक और अनौपचारिक दोनों परिवेश में बच्चे के सीखने को देखने पर समझ आता है कि यह प्राकृतिक ही है कि हम एक दूसरे को देखते हुए, समझते हुए बहुत कुछ सीखते चलते हैं। कई मौक़ों पर उद्‌देश्य सीखना नहीं रहता हो तब भी एक साथ हम सीख ही जाते हैं। यह भी कि एक दूसरे से सीखना, एक अनौपचारिक से परिवेश में सीखना, थोड़ा आसान होता है। शैक्षिक दस्तावेज़ों में यह बात बार-बार रेखांकित की जाती है कि सीखना एक सक्रिय प्रक्रिया है। सीखने में, सीखने वाले का सक्रिय रूप से शामिल होना बहुत ज़रूरी है। लेकिन अधिकांश विद्यालयों में आमतौर पर जो कक्षा प्रक्रियाएँ घटित होती नज़र आती हैं उनमें शिक्षक और बच्चे के बीच जिस तरह का संवाद होना चाहिए, उसका अभाव नज़र आता है। बच्चे रिसीवर की तरह सुन रहे होते हैं, जो भी सिखाया जा रहा है चाहे वह विषय हो, क्षमताएँ या मूल्य, यह सभी बच्चे के परिवेश से कैसे जुड़ रहे हैं, उनके अपने अनुभव, पसन्द, नापसन्द उसमें कैसे शामिल हो रहे हैं और बच्चों की दृष्टि से इन्हें देख पाना थोड़ा मुश्किल होता है। जब ये जुड़ाव या सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं तो जो सिखाया जा रहा है उसे समझना बच्चे के लिए मुश्किल हो जाता है। सीखना जब ख़ुद के अनुभवों, सन्दर्भों, परिस्थितियों से जुड़ता है तब सीखने वाले अपेक्षित दक्षताओं को हासिल करने के लिए आगे बढ़ पाते हैं। इसलिए यह बहुत ज़रूरी हो जाता है कि ऐसा माहौल, प्रक्रियाएँ निर्धारित की जाएँ जिनमें बच्चे अपनी बातें, जिज्ञासाएँ, प्रश्न, भ्रम रख पाएँ, और अपनी रुचि व गति के अनुसार सीख पाएँ। हमारा इस बात में पूरा विश्वास हो कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और यह भी कि हर बच्चे की रुचि, उसके सीखने के तरीक़े और गति अलग होती है। इस सन्दर्भ में यह ज़रूरी हो जाता है कि सभी बच्चों की दक्षताओं, अनुभवों, और रुचियों को बेहतर तरीक़े से समझा जाए। बिना यह समझे ऐसे समूह का निर्माण मुश्किल होगा जो निर्धारित लक्ष्यों को हासिल कर सके। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* भी सहभागी रूप से सीखने (peer learning) को स्पष्ट रेखांकित करती है। नीति कहती है कि बच्चे सतत सीखते रहने की कला सीखें, समस्या समाधान और तार्किक एवं संरचनात्मक / रचनात्मक रूप से सोचना सीखें, विभिन्न विषयों के अन्तर्सम्बन्धों को

औपचारिक और अनौपचारिक दोनों परिवेश में बच्चे के सीखने को देखने पर समझ आता है कि यह प्राकृतिक ही है कि हम एक दूसरे को देखते हुए, समझते हुए बहुत कुछ सीखते चलते हैं। कई मौक़ों पर उद्देश्य सीखना नहीं रहता हो तब भी एक साथ हम सीख ही जाते हैं। यह भी कि एक दूसरे से सीखना, एक अनौपचारिक से परिवेश में सीखना, थोड़ा आसान होता है।

देख पाएँ, कुछ नया सोच पाएँ, नई जानकारी और बदलती परिस्थितियों को समझ पाएँ और इन परिस्थितियों में जानकारी का उपयोग कर पाएँ। शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो, उसमें जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर उपरोक्त प्रक्रियाएँ संचालित होती हुई नज़र आएँ। साथ ही प्रक्रियाएँ लचीली हों, समग्रता में हों, और समन्वित रूप से देखने, समझने में सक्षम बनाने वाली हों। अगर हम इन सारे बिन्दुओं को समग्रता में देखें तो ये सब सीधे साथ-साथ सीखने पर जाकर केन्द्रित होती हैं। जैसा मैंने पहले कहा, अभी स्कूलों / कक्षाओं में प्रक्रियाएँ इस तरह से होती हैं कि वहाँ बच्चे अपने-अपने दायरों में ही सिमटकर रह जाते हैं। सबकुछ इतना औपचारिक होता है कि मन में जो चल रहा है, स्पष्ट रूप से कह पाना सम्भव नहीं हो पाता। समूह की प्रक्रिया यह अवसर उपलब्ध कराती है कि हम एक दूसरे को सुनें, समझें, एक दूसरे के विचारों को जानें, अपने विचार उनके सामने रखें और आपस की सहभागिता बढ़ाएँ। इस दृष्टि से भी कि पियर लर्निंग ऐसे नागरिकों को तैयार करने का एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया है जिनके बारे में संविधान शिक्षकों, विद्यालयों से अपेक्षा रखता है। शिक्षा नीति के मूलभूत सिद्धान्त भी साथ-साथ सीखने पर ज़ोर देते हैं। ये सिद्धान्त हैं :

पहला, हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की पहचान और उनके विकास के लिए प्रयास करना, मतलब हर बच्चे में कुछ-न-कुछ ऐसा है जो बाक़ी के लोगों को वो सीखने में मदद कर सकता है।

दूसरा, सीखने की प्रक्रिया में लचीलापन हो ताकि शिक्षार्थी अपने सीखने के तौर-तरीक़े चुन सके। इसमें भी यह एक निर्णायक प्रक्रिया साबित हो सकती है।

तीसरा, विषयों के बीच, पाठ्यक्रम और पाठ्येतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षिक धाराओं के बीच, जो स्पष्ट अलगाव हैं उन्हें समाप्त करना है। साथ-साथ सीखने के तहत चर्चाओं, सामूहिक चर्चाओं में जब बच्चों को शामिल करते हैं, हम पाते हैं कि भाषा के पाठ सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों की तरफ़ भी ले जाते हैं व पर्यावरण के प्रति भी संवेदनशील बना सकते हैं। बच्चे की भाषा को कक्षा में लाना, पाठ्यपुस्तक, विद्यालय की भाषा के पहले जो ब्रिज है उनको बनाना, स्कूलों और घर के बीच, समाज और स्कूल के बीच की दूरी को कम करना, इन सभी में ऐसी शिक्षण प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण रोल अदा कर सकती हैं। इसके साथ ही एक दूसरे को समझ पाना, सहयोग, सहभागिता, सहकारिता जिनके बग़ैर लोकतांत्रिक समाज सम्भव नहीं है, इन प्रक्रियाओं से इनके विकसित और सुदृढ़ होने की भी सम्भावनाएँ बनती हैं। कक्षा एक में पढ़ने वाले बच्चों के साथ उनके छोटे भाई-बहिन भी विद्यालय में आ जाते हैं। ये बच्चे कक्षा का हिस्सा नहीं होते, उनके साथ औपचारिक शिक्षण नहीं होता लेकिन दो-चार महीनों में वे कुछ बुनियादी दक्षताओं की तरफ़ स्वयं बढ़ने लगते हैं। खेल में शामिल होने से खेल के नियम, क़ायदे उनको समझ में आने लगते हैं, बाल गीत हाव-भाव के साथ याद होने लगते हैं। ये सारी



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

बातें इस तरफ़ ही इशारा करती हैं कि यदि बच्चों को ऐसे अवसर दिए जाएँ, एक दूसरे के साथ सीखने के मौक़े दिए जाएँ तो वे बहुत आसानी से और बहुत-से दायरों में सीखेंगे।

सीखने को सहज बनाने की बात होती है। यानी, ऐसा सीखना जिसमें डर, और किसी तरह का दबाव न हो, अपने प्रश्न, जिज्ञासाओं को रखने की पूरी स्वतंत्रता हो। साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया में ये चीज़ें स्वत: ही आ जाती हैं। सहज शायद इस वजह से हो पाती है कि बच्चे अपने साथियों को बात करने की आज़ादी देते और बेहतर ढंग से समझते हैं। हम वयस्कों को सोचने की ज़रूरत है कि हमारे लिए इसके निहितार्थ क्या हैं। जब हम बच्चों के साथ उनके सहयोगी बनकर सीखने का काम करें तो हम उनको बेहतर समझ पाएँ, उनके लिए हमें अपने व्यवहार या सोच में क्या परिवर्तन करने की ज़रूरत हो सकती है। साथ-साथ सीखने में हम एक दूसरे को, एक दूसरे के प्रश्नों को सुनना सीखते हैं, सहमतियों, असहमतियों को सुनना सीखते हैं, पक्ष, विपक्ष को सुनना सीखते हैं। यह भी सीखना होता है कि हम बिना किसी बायस के उन प्रश्नों या शंकाओं पर विचार कर सकें। ये सारी चीज़ें लगातार किसी व्यक्ति को, बच्चे को, या वयस्क के रूप में हमें भी लगातार सीखने वाला बनने के लिए ज़रूरी होती हैं।

> सीखने को सहज बनाने की बात होती है। यानी, ऐसा सीखना जिसमें डर, और किसी तरह का दबाव न हो, अपने प्रश्न, जिज्ञासाओं को रखने की पूरी स्वतंत्रता हो। साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया में ये चीज़ें स्वतः ही आ जाती हैं। सहज शायद इस वजह से हो पाती है कि बच्चे अपने साथियों को बात करने की आज़ादी देते और बेहतर ढंग से समझते हैं।

रजनी : श्वेता, आप अपनी बात रखें।

श्वेता : अकसर प्राथमिक स्कूलों में देखते हैं कि कुल तीन शिक्षक हैं और पाँच कक्षाएँ हैं। ऐसे में अकसर कक्षा 1 और 2 का एक समूह बन जाता है, हालाँकि कभी-कभी उसमें कक्षा तीन भी शामिल हो जाती है। कक्षा 4 और 5 को सीखने की प्रक्रिया में एक विस्तारित स्तर पर देखते हैं। यहाँ हर कक्षा एक शिक्षक सँभाल रहा होता है। मेरे अनुभव से ज़्यादा चुनौतियाँ कक्षा 1 और 2 के बच्चों के साथ काम करने के दौरान ही आती हैं क्योंकि कक्षा 1 और 2 के बच्चे अपने परिवेश व अनुभव के साथ आते ज़रूर हैं, लेकिन स्कूल की औपचारिक प्रक्रियाओं को समझना, विषय से जूझना, अवधारणा को और बेहतर तरीक़े से समझना, स्कूल की भाषा को अपनाना, इन चीज़ों से सामंजस्य बैठाने में समय लगता है। जहाँ कक्षा 1 और 2 में कम बच्चे होते हैं, जैसे– 15, 20 या 25 तो शिक्षक कक्षा को सँभाल पाते हैं। लेकिन जब बच्चों की संख्या ज़्यादा हो जाती है तो कक्षा को सँभालने की चुनौतियाँ भी बढ़ने लगती हैं। ऐसे सन्दर्भ में समूह में सीखने को कक्षा के स्तर पर देख सकते हैं।

दूसरा कक्षा प्रक्रियाओं को कक्षा संरचना के स्तर पर देख सकते हैं, जैसे– कक्षा की संरचना कैसी हो? बच्चों की संख्या अधिक होने पर क्या किया जाए? इसमें समूह निर्माण करके समूह में बच्चों को कुछ टास्क देना और उनके साथ काम करना। इसके अलावा, किसी ख़ास अवधारणा को पढ़ाते वक़्त बच्चों के स्तर, उनकी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षक अपनी कक्षाओं में समूहों का निर्माण करते हैं। इन समूहों में एक ही कक्षा में पढ़ने वाले अलग-अलग स्तर के बच्चे शामिल होते हैं और एक दूसरे के साथ सीखने की प्रक्रियाएँ अपना रहे होते हैं। कई बार जो बच्चे बेहतर नहीं सीख पा रहे हैं या जिनके सीखने की गति थोड़ी धीमी है, तब भी हम उनको अलग समूह में बाँट देते हैं। जैसे– ये दस बच्चे ऐसे हैं जो अभी पढ़ना नहीं जानते हैं, ये कुछ बच्चे कुछ शब्दों और अक्षरों को पहचानते हैं, इनके दो अलग समूह बनाए जा सकते हैं। बाक़ी जो बच्चे उनसे थोड़ा और

आगे हैं, पढ़ना जानते हैं, उनका एक समूह बन सकता है। ऐसी प्रक्रियाएँ कक्षा में होती ही हैं, इनपर और बारीक़ी से मैं बात करूँगी।

साथ-साथ सीखने की ज़रूरत क्यों होती है? बच्चे अपने अनुभवों से सीखते हैं। वे अपने अनुभव को साझा करना चाहते हैं उसपर चर्चा और एक दूसरे से सवाल करना चाहते हैं। किसी भी व्यक्ति के सोचने की प्रक्रिया, केवल उस व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि दूसरे व्यक्ति को भी प्रभावित करती है, यानी इन सभी प्रक्रियाओं के द्वारा हम एक दूसरे से कुछ सीख रहे होते हैं। ऐसी प्रक्रियाएँ हो पाएँ, इसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों के लिए स्कूल में कुछ ऐसे मौक़े बनाए जाएँ जहाँ बच्चों को उनके लर्निंग लेवल के हिसाब से सीखने को मिले, पर वहाँ विविधता भी शामिल हो। जब बच्चों के लर्निंग लेवल के हिसाब से समूह बनाते हैं तो वहाँ ऊपर ज़िक्र किए गए मौक़े ज़्यादा बनते हैं। किसी समूह में कुछ बच्चे ऐसे हो सकते हैं जो अपनी बात को बेहतर तरीक़े से रख पाते हैं और कुछ बच्चे शान्त होते हैं। शान्त बच्चे भले ही अपनी बात को बेहतर तरीक़े से नहीं रख पाएँ लेकिन सुनने की प्रक्रिया ज़रूर हो रही होती है। किसी-न-किसी कौशल, किन्हीं प्रक्रियाओं के माध्यम से समूह के सभी बच्चे बातचीत में शामिल हो रहे होते हैं। ये कौशल के विकास में भी ज़रूरी होता है, जैसे– मौखिक भाषा, सुनने के कौशल, आदि के विकास के लिए। समूहों में काम करते हुए बच्चे समस्या समाधान भी सीखते हैं। जब बच्चों को समूह में कुछ टास्क, समस्या या ज़िम्मेदारी दी जाती है, तो वे एक साथ उससे गुज़रते हुए कई तरह के समाधान भी सोच रहे होते हैं और उनपर भी चर्चा कर रहे होते हैं। इससे समस्या समाधान करने का कौशल भी विकसित होता है। बच्चे अपने दोस्तों, शिक्षकों से खुल नहीं पाते हैं लेकिन समूह में वे अपने दोस्तों के साथ सहजता के साथ सीख रहे होते हैं।


चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

अकसर शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ टास्क और निर्देश देने तक सीमित होती है और फिर बच्चे काम कर रहे होते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक एक सहयोगी के रूप में होता है। शिक्षक से अपेक्षित है कि वह यह देखे और समझे कि समूह में जब बच्चे काम कर रहे हैं तो प्रक्रियाएँ किस तरह से हो रही हैं, किस बच्चे को क्या समझ नहीं आ रहा, क्या टास्क में कुछ बदलाव करने की ज़रूरत है? कई बार जब मिश्रित समूह बनते हैं तो यह भी होता है कि तेज़ गति से काम करने वाले बच्चे अपना काम जारी रखते हैं लेकिन अन्य बच्चे चुपचाप ही बैठे रहते हैं। यहाँ भी शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि वह समूह को जीवन्त बनाए रखने और इन विविध क्षमताओं वाले बच्चों के बीच सामंजस्य बनाए रखने में मदद करे और सभी बच्चे एक दूसरे की बातों में शामिल हों। कक्षा में विषयों को पढ़ाने, अवधारणाओं पर काम करने के लिए समूह कार्य होता है ताकि बच्चे उन अवधारणाओं को बेहतर तरीक़े से सीख पाएँ। एक समूह निर्माण में विषय के शिक्षण, स्तर के आधार के अलावा अन्य बातें भी ध्यान में रखने की ज़रूरत है। कक्षाओं में विविध पृष्ठभूमि के बच्चे होते हैं। ये विविधता जेंडर की, जाति, भाषा, सामाजिक स्तर की हो सकती है। समूह

बनाते समय इन सभी विविधताओं को शामिल करना ज़रूरी है। मेरा अनुभव है कि कक्षा 1 और 2 में तो नहीं लेकिन कक्षा 3 और 4 तक आते-आते लड़कियों और लड़कों के अलग समूह बनने लगते हैं, तो समूह कार्य के ज़रिए विषयों की अवधारणाओं पर काम करने के साथ-साथ इन मुद्दों पर भी काम करने की ज़रूरत है। जेंडर, जाति, भाषा आदि को ध्यान में रखते हुए समूह कार्य (फलाँ भाषा बोलने वाला, या फलाँ जाति का बच्चा है जो शायद क्लासरूम में बहुत अलग-अलग रहता है या उसका इंटरैक्शन नहीं होता) एक दूसरे के बीच की दूरी पाटता है और बच्चों के बीच एक दूसरे के प्रति संवेदना, सहयोग, समझने की भावना आती है। यहाँ पर बच्चों में आस उत्पन्न हो रही होती है।

मैं समूह में काम करने के कुछ ठोस उदाहरण रखूँगी। हम लॉकडाउन में मोहल्ला लाइब्रेरी चला रहे थे। हमने देखा कि कक्षा 5 और 6 के और कुछ कक्षा 2 और 3 के बच्चे साथ में बैठे हैं। उनमें से एक बड़ा बच्चा किताब लेकर बैठा है और अँगुली रखते हुए पढ़ रहा है। दूसरे बच्चे उसकी तरफ़ ध्यान दे रहे हैं और किताब को देख भी रहे हैं व सुन भी रहे हैं। इन बच्चों की उम्र भी फ़र्क़ है, और कक्षा व सीखने के स्तर भी फ़र्क़ हैं। एक और उदाहरण है, एक शिक्षिका गणित पढ़ा रही हैं। कक्षा में 35 बच्चे हैं। वे बच्चों को 10-10 के बण्डल बनाना सिखा रही हैं। और उन्होंने 5-5 बच्चों के ऐसे समूह बनाए हैं जिनमें कक्षा 2 और कक्षा 1 के बच्चे एक साथ हैं। इन समूहों में जिन बच्चों को 10-10 का बण्डल बनाना आ रहा है वे अन्य बच्चों की मदद कर रहे हैं। कोई बच्चा गिनती करते हुए अटक जा रहा है तो वो उस बच्चे की मदद कर उसको सीखने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। शिक्षिका भी बीच-बीच में अवलोकन कर रही हैं, वह भी बच्चों की इस विविधता को समझ रही हैं। कई बार शिक्षिका उन बच्चों पर ध्यान नहीं देतीं जो बेहतर नहीं कर पाते। उन्हें लेबल भी कर दिया जाता है। समूह बनाते समय इस बात की तरफ़ भी ध्यान रखना ज़रूरी है। हर बच्चे को कक्षा में सम्मान देते हुए, उसके सीखने की विविधता, सामाजिक विविधता को ध्यान में रखकर महत्त्व देते हुए कक्षा में स्थान दें।

रजनी : मैं युगलजी से गुज़ारिश करूँगी कि वो अपनी बात रखें।

युगल किशोर : 2019 सितम्बर से लर्निंग एक्टिविटी सेंटर और मोहल्ला केन्द्र शुरू हुए। यहाँ की शिक्षण प्रक्रिया में समूह में होने वाली गतिविधियाँ बहुत-सी हैं। समूह निर्माण की भी अपनी अलग प्रक्रिया है और शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ निर्देशन देना या 'चॉक एंड टॉक' की नहीं है, क्योंकि पीयर लर्निंग की पूरी प्रक्रिया ही पारस्परिक भागीदारी की है। पर्यावरण या विज्ञान, या फिर भाषा और गणित में समूह में की जाने वाली कई गतिविधियाँ ऐसी हैं जिनमें समूह ज़रूरी होता है, जैसे– कौन आया कौन गया, झट पट हाथ रख। कई बार समूह पूर्व-निर्धारित होता है और कई बार उसका रैंडम होना ज़रूरी होता है। जैसे– 'नेता नेता चाल बदल', जिसमें सभी बच्चे एक गोले में खड़े ताली बजा रहे होते हैं और एक नेता होता है जो निर्धारित एक्ट करता है और बाक़ी उसको कॉपी करते हैं। एक बच्चा जो कुछ दूर होता है उसे आकर बताना होता है कि नेता कौन है, किसके कहने पर ये लोग अपनी चाल या क्रिया बदल रहे हैं। पाठ्यपुस्तकों पर आधारित गतिविधियों के इतर भी कई सारे उद्देश्यों को लेकर समूह

> समूह निर्माण की भी अपनी अलग प्रक्रिया है और शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ निर्देशन देना या 'चॉक एंड टॉक' की नहीं है, क्योंकि पीयर लर्निंग की पूरी प्रक्रिया ही पारस्परिक भागीदारी की है। पर्यावरण या विज्ञान, या फिर भाषा और गणित में समूह में की जाने वाली कई गतिविधियाँ ऐसी हैं जिनमें समूह ज़रूरी होता है, कई बार उसका रैंडम होना भी ज़रूरी होता है।

में काम हो सकता है। जैसे कि विद्यालयों में अलग-अलग समूह बने होते हैं और कुछ ख़ास ज़िम्मेदारियाँ उनके पास होती हैं। पौधों को रोज़ पानी डालना है, देखना है, उनमें पानी डालने के लिए पानी की व्यवस्था कहाँ से करनी है, आदि के लिए एक समूह बनाया। समूह का एक लीडर भी है। यह समूह मिलकर सुनिश्चित करता है कि ये सारी सुविधाएँ हमारे स्कूल में उपलब्ध हैं कि नहीं? यहाँ भी पारस्परिक भागीदारी या पीयर लर्निंग मुझे दिखती है। बच्चे एक दूसरे से बातचीत, तर्क संगठित तरीक़े से कैसे करते हैं और उस प्रक्रिया को पूरा करते हैं, तो कक्षा के बाहर भी पीयर लर्निंग होती है। मॉनीटर भी कक्षा में एक अहम रोल अदा करता है। उसकी भूमिका सिर्फ़ कक्षा में शान्ति बनाए रखने की है? या फिर यह भी है कि वह कक्षा में हो रही गतिविधियों को भी ऑब्ज़र्व करे, अपने इनपुट और गाइडेंस भी दे। मैंने इस विषय पर सोचने की कोशिश की तो पाया कि बहुत-सी दक्षताएँ वो साथ-साथ सीख रहे होते हैं। जैसे– ऑब्ज़र्व करने, विश्लेषण करने की क्षमता, अपनी बात को प्रस्तुत करना, अर्थात शिक्षक से किसी की शिकायत करनी है या मदद माँगनी है, आदि। पीयर ग्रुप में मॉनीटर नेतृत्व की भूमिका में होते हैं और वे कॉन्फ़्लिक्ट को भी मैनेज कर रहे होते हैं।

समूह बनाने के आधारों के बारे में बात हुई है। अभी कुछ मोहल्ला कक्षाओं में ऐसे समूह भी थे जिनमें कक्षा 1 से 8 तक के बच्चे केन्द्रों पर आते थे। एक नया चैलेंज था स्तर में इतनी विविधता होने से, निश्चित तौर पर ऐसी विविधता से कक्षा प्रबन्धन में भी और जो टॉपिक व जो भी विषय या अवधारणा लेंगे उसके शिक्षण में चुनौतियाँ आ सकती हैं। लेकिन यहाँ हमें विविधता का यहाँ फ़ायदा मिला। इस महामारी के दौर में बच्चे लगभग 15-18 महीने कक्षा से डिस्कनेक्ट रहे। हालाँकि, मोहल्ला कक्षाएँ लगीं और उन्होंने कई लोगों के साथ काम किया और सीखा। बच्चों के मम्मी-पापा, उनके भाई-बहिन, शिक्षक, दोस्त सभी इसमें शामिल हुए तो जो पीयर लर्निंग कक्षा तक सीमित थी या जो हमउम्र या एक ही कक्षा के बच्चों तक सीमित थी वो दायरा बढ़ गया। और समूह की इस विविधता का फ़ायदा बच्चों को मिला भी। एक दूसरी तरह के समूह में ज़बरदस्त पीयर लर्निंग हमें देखने को मिली। हमने केन्द्रों पर और स्कूलों में 4-5 बच्चों का एक समूह बनाया। उसकी ज़िम्मेदारी थी पुस्तकालय का संचालन करना, पुस्तकालय के पीरियड सुनिश्चित करना, बच्चे किताब ले रहे हैं और किताबें ठीक-ठाक वापस आ रही हैं या नहीं, साथ ही यह भी सुनिश्चित करना कि किसने किताब ली और कब वापस दी, उसका इस्तेमाल हुआ या नहीं, सबसे ज़्यादा पढ़ी जाने वाली किताब कौन-सी है और उसका ओवरऑल संचालन। इस तरह के समूह में एक दूसरे के साथ जो सामंजस्य बैठता है, इसमें शिक्षक की भूमिका सिर्फ़ बच्चों को उनकी भूमिका बताना और फिर कहीं-कहीं गाइड करना है। हम कोशिश करते हैं कि यह समूह कम-से-कम तीन महीने के लिए स्थाई रहे और तीन महीने बाद फिर से रोटेशन पर जाए। तीन महीने बाद जब इसके संचालन के लिए दूसरा समूह बनता है तो पहले समूह के मेम्बर्स उनकी मेन्टरिंग करते हैं और संचालन में मदद करते हैं। निश्चित तौर पर, निर्देशक के रूप में शिक्षक की मुख्य ज़िम्मेदारी तो है ही लेकिन उसमें शामिल होकर सीखने की प्रक्रिया में जो वो ख़ुद सीखते हैं और अपने कामों में बेहतरी करते हैं और जो फाइंडिंग दूसरों



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

तक पहुँचाते हैं, तो मुझे लगता है कि बतौर फ़ेसिलिटेटर और लर्नर के रूप में भी शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

रजनी : साथ-साथ सीखने पर कई बातें फ़र्क़ तरीक़े से सामने आ रही हैं और उससे बहुत सारे नए विचार निकलकर आ रहे हैं। सावित्रीजी से गुज़ारिश है कि अपनी बात रखें।

सावित्री : बच्चे घर, समुदाय में यह देखते ही हैं कि लोग समूह में काम करते हैं। अत: बच्चों को शुरू से ही मालूम होता है कि समूह में काम कैसे किया जाए। जब बच्चे स्कूल आते हैं तो यह कौशल धीरे-धीरे बेहतर होता जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं उनमें और बेहतर ढंग से कार्य करने की क्षमताएँ विकसित होती जाती हैं। समूह में सभी बच्चे अपनी बात रख सकें इसके लिए एक दूसरे के साथ सहज होना ज़रूरी है। ऐसा नहीं हो कि कुछ बच्चों को अपनी बात को रखने का मौक़ा ही न मिले। क्योंकि अकसर बहुत-से बच्चे बोलने में झिझकते हैं, जानते हुए भी अपनी बात को मन में दबा लेते हैं लेकिन कुछ अन्य के साथ अपने विचार बेहतर तरीक़े से रख सकते हैं। मैं जब भी अपनी कक्षा में कार्य कराती हूँ, मेरे सबसे पहले निर्देश यह होते हैं कि सबसे पहले दिए गए टास्क को अपने साथियों के साथ साझा करें और सभी को यह समझ आ जाए तभी आगे बढ़ें। मैंने पाया है कि ऐसा करने से बच्चों की भागीदारी में सकारात्मक फ़र्क़ पड़ता है। इस बात से भी मैं सहमति रखती हूँ कि शिक्षक होने के नाते कक्षा की विविधता को समझना चाहिए और भाषा, स्तर, पारिवारिक स्थिति, आदि का सम्मान करते हुए समूह निर्माण का काम होना चाहिए। समूह बनाने में हम बच्चों की मदद करें, गतिविधियों / टास्क को ठीक से बताएँ, नियम अगर है तो बच्चों से साझा करें, समय सीमा, सबको बोलने के अवसर देना, किस तरीक़े से कार्य किया जा सकता है, आदि। ये बातचीत करने के बाद बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए छोड़ देना चाहिए। फिर शिक्षक लगातार समूहों में जाकर बच्चों से बात करते रहें, इससे मुझे लगता है कि बच्चों के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है, उन्हें कार्य करने में बहुत मदद मिलती है और शिक्षक भी यह समझ पाता है कि किस तरीक़े से बच्चे कार्य कर पा रहे हैं या नहीं, और मैं जब अगली बार कार्य करूँगी तो मेरी योजना क्या होगी? क्या मुझे उसमें कुछ संशोधन करना होगा ताकि बच्चे सहज तरीक़े से अपना काम कर सकें और सीखते जाएँ। साथ-साथ सीखने के दौरान बच्चे एक दूसरे से बातचीत करना, एक दूसरे के संशयों, प्रश्नों, उत्तरों को समझना, सम्मान देना भी सीखते हैं। इससे कक्षा प्रक्रिया बेहतर होती है। बच्चे बेहतर कर पाते हैं और अपना रिज़ल्ट अच्छा दे पाते हैं। उनमें एक ख़ुशी वाला माहौल रहता है एवं बच्चे सन्तुष्ट रहते हैं कि मैंने इस कार्य को इस तरीक़े से पूरा किया और मुझे ऐसा करने में बहुत मज़ा आया।

साथ-साथ सीखने के दौरान बच्चे एक दूसरे से बातचीत करना, एक दूसरे के संशयों, प्रश्नों, उत्तरों को समझना, सम्मान देना भी सीखते हैं। इससे कक्षा प्रक्रिया बेहतर होती है। बच्चे बेहतर तरीक़े से कर पाते हैं और अपना रिज़ल्ट अच्छा दे पाते हैं। उनमें एक ख़ुशी और ख़ुशी वाला माहौल रहता है एवं बच्चे सन्तुष्ट रहते हैं कि मैंने इस कार्य को इस तरीक़े से पूरा किया।

रजनी : लोकेशजी आप अपनी बात रखें।

लोकेश : मैं पीयर लर्निंग की व्यवहारिक चुनौतियों की बात करूँगा। पहला कन्फ़्यूज़न यह आता है कि समूह किस तरह बनाए जाएँ? क्या हम ऐसे बच्चों को एक साथ रखें जो एक स्तर के हैं, जैसे– तेज़ बच्चों को तेज़, औसत को औसत बच्चों के साथ, और जो काफ़ी संघर्ष कर रहे हैं वो सारे एक साथ? लेकिन इसमें बच्चों की जो इमेज बनती है उसमें दिक़्क़त आती है।

तेज़ बच्चों को साथ रखने पर ये कमज़ोर बच्चों पर टिप्पणियाँ करते हैं और कमज़ोर बच्चे ख़ुद को और भी कमज़ोर मानना शुरू कर देते हैं। दूसरा तरीक़ा मिश्रित समूह बनाने का होता है। लेकिन यहाँ शिक्षक के लिए चुनौती आती है कि वो अलग स्तर और गति से सीखने वाले बच्चों के सीखने को कैसे सुनिश्चित करे। मुझे लगता है समूह में काम करवाना काफ़ी पेचीदा होता है। बहुत-से बच्चे समूह में काम करना बिलकुल पसन्द नहीं करते, काफ़ी कोशिशों के बावजूद वो समूह में भाग नहीं लेते या समूह में बैठ जाते हैं पर उसमें भागीदारी नहीं करते। तीसरा यह भी होता है कि समूह में एक या दो बच्चे डोमिनेट करते हैं। कई बार डोमिनेशन बढ़ भी जाता है और समूहों में छोटे-छोटे उप-समूह बन जाते हैं। बच्चों में राजनीति शुरू हो जाती है अपने-आप को अच्छा, बेहतर साबित करने की। वे अपने समूह के बाक़ी साथियों पर जल्दी काम करने का दबाव बनाते हैं और ये बहुत ज़्यादा घातक हो जाता है। इसका हल ये हो सकता है कि हम समूह बनाते समय, समूह बनाने का उद्देश्य ज़रूर स्पष्ट करें। यह भी कि ये अस्थाई समूह है। दूसरा, समूह के सदस्यों को एक दूसरे को जानने के लिए पर्याप्त समय देना। जब बच्चे एक दूसरे को जानते हैं तब बच्चे एक दूसरे की मदद भी करने लगते हैं। बच्चे ख़ुद बताते हैं कि इस बच्चे में ये कमज़ोरी है, ये बहुत अच्छा काम करता है। तीसरा, समूहों को बदलते रहना चाहिए। यदि स्थाई समूह बन जाता है तो फिर सामूहिकता वाली भावना आने लगती है। चौथा, जब समूह बनाते हैं तो समूह के साथ किए जाने वाले काम, उसकी पेडागॉजी, विषयवस्तु, विषयवस्तु के अनुसार किस तरह की गतिविधि होगी, उसके बुनियादी सिद्धान्त इन सभी को बारीक़ी से देखना ज़रूरी है। कई बार समूह बना लेते हैं, बच्चों को डिवाइड भी कर लेते हैं लेकिन योजना इतनी मजबूत नहीं होती कि समूह में कुछ अर्थपूर्ण काम हो पाएँ। इसलिए योजना में इसकी जगह हो कि ये चार बच्चे अलग हैं। कौन-सा बच्चा किस तरह की सम्भावना लेकर आएगा, कौन-सा बच्चा कहाँ संघर्ष करेगा इसको पहले से दर्ज कर लें। सामान्यत: यह पाया जाता है कि समूह कार्य प्रभावी होता है। इसका एक कारण यह है कि हम सामाजिक प्राणी हैं, हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू हैं जो हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसपर जितनी ज़्यादा बातचीत बच्चों के साथ की जाती है और उन्हें इस बात का आभास दिलाया जाता है कि समूह में सब मिलकर काम करेंगे तो हम काफ़ी आगे जाएँगे। समूह अलग-अलग तरह से बनाए जा सकते हैं। सिर्फ़ कक्षा के बच्चों के समूह के बजाय सीनियर और जूनियर बच्चों का समूह बनाया जा सकता है। बड़ी कक्षा और छोटी कक्षा का समूह ज़्यादा काम करता नज़र आता है क्योंकि बड़े बच्चों को कुछ ज़्यादा जानकारी रहती है। जोन ऑफ़ प्रोक्सिमल डेव्लपमेंट का विचार काम करता है। बहुत सारी ऐसी चीज़ें भी हैं जो हमें नहीं मालूम, बहुत सारी ग़लतियाँ हम शिक्षक भी करते हैं। लेकिन जब हम इन्हें स्वीकार करना शुरू करते हैं तो फिर एक ख़ास छवि की, जजमेंट की जो दीवार होती है टूट जाती है। एक शिक्षक होने के तौर पर ये बुनियादी सिद्धान्त अपने साथ रखें। इनके सकारात्मक परिणाम होते हैं।



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

रजनी : धन्यवाद लोकेश, आप सभी साथियों से गुज़ारिश है कि आप अगर एक-दो मिनट में कुछ कहना चाहें।

पूनमजी, आपसे सवाल है कि बच्चे इस महामारी के वजह से 18 महीने बाद स्कूल जाना शुरू कर रहे हैं, उनपर मानसिक तौर पर क्या प्रभाव या असर पड़ेगा?

पूनम : पहले हमें ख़ुद की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करना पड़ेगा। लम्बे समय से भय का वातावरण चल रहा था, असुरक्षा की भावना हम सबके मन में घर कर गई है, क्योंकि सभी ने अपने परिजनों को खोया है तो इसका भी मानसिक प्रभाव हम सभी पर पड़ा है। विद्यालय आने के बाद अभी भी हम इस तरह की गुंजाइशों में जी रहे हैं कि हमारे बच्चों को कुछ न हो जाए। सरकारी गाइडलाइन भी इसी तरीक़े की है कि आपको सामाजिक दूरी रखनी है। मुँह पर मास्क लगाना है, खाना साथ में नहीं खाना है, इस तरह की बहुत सारी पाबन्दियाँ लगाई हुई हैं तो जुड़ना चाहते हुए भी हम जुड़ नहीं पा रहे हैं। लेकिन हमें ख़ुद इस चीज़ के लिए तैयार रहना होगा और सबसे बड़ी बात, कि पढ़ाई को हौवा न बनाएँ, इसको एकमात्र मुद्दा न बनाएँ कि बच्चों की पढ़ाई नहीं हुई तो बस ख़त्म ही है ज़िन्दगी।

इस तरह की जो मानसिकता लेकर एक युद्ध लड़ रहे हैं और 24 घण्टे बच्चों पर एक प्रेशर बनाते हैं कि पढ़ाई करो, पढ़ाई करो, तो इस तरीक़े का वातावरण हमें नहीं बनाना है। जितना सरल, सुगम, सहज वातावरण पहले हम अपने दिमाग़ में तैयार करेंगे उतना ही सहज और सुगम वातावरण हम बच्चों को दे पाएँगे, आख़िर वे सीख तो हमसे ही रहे हैं। हम ही तो बच्चों को सिखा रहे हैं और इसमें सहयोगी के रूप में अभिभावक हैं, हम लोग हैं, समाज है और उसके दायरे भी हैं, शिक्षक और साथी बच्चे तो वैसे भी बहुत कम समय के लिए ही जुड़ पाते हैं बच्चे अच्छा ही करेंगे इसको सबसे पहले अपने दिमाग़ में रखें ताकि हम बच्चों के साथ उसी तरीक़े के वातावरण और मानसिकता से कार्य कर पाएँ।

रजनी : और कोई साथी अपनी बात रखना चाहेंगे?

युगल : बतौर शिक्षक समूह कार्य में यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि सबकी भागीदारी हो। आमतौर पर हम देखते हैं कि कुछ बच्चे बोल पाते हैं और कुछ नहीं। दूसरा, मेरे ख़्याल से फ़ास्ट लर्नर या स्लो लर्नर जैसी टर्म्स भी ग़लत हैं। कुछ बच्चों को किसी ख़ास विषय के लिए ज़्यादा समय की ज़रूरत या किसी ख़ास टॉपिक के लिए किसी ख़ास शिक्षक की ज़्यादा ज़रूरत है, या फिर हो सकता है उसके किसी ख़ास साथी की या आपकी क्लास में कुछ बच्चे हो सकते हैं जो बेहतर तरीक़े से उनको उस टॉपिक को समझा सकते हैं। समय उनकी ज़रूरत के अनुसार आवण्टित किया जाए।

बतौर शिक्षक समूह कार्य में यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि सबकी भागीदारी हो। आमतौर पर हम देखते हैं कि कुछ बच्चे बोल पाते हैं और कुछ नहीं। दूसरा, मेरे ख़्याल से फ़ास्ट लर्नर या स्लो लर्नर जैसी टर्म्स भी ग़लत हैं। कुछ बच्चों को किसी ख़ास विषय के लिए ज़्यादा समय की ज़रूरत या किसी ख़ास टॉपिक के लिए किसी ख़ास शिक्षक की ज़्यादा ज़रूरत है

रजनी : एक और सवाल है, जो बच्चे लॉकडाउन के कारण प्रमोट होकर कक्षा 3 में आ गए हैं उनके साथ किस प्रकार का अध्ययन करवाया जाए?

लोकेश : रजनीजी, मैं इस सवाल को लेना चाहूँगा।

लोकेश : यह महत्त्वपूर्ण सवाल है और शायद शिक्षा में पहली बार आया होगा। बहुत ही व्यवहारिक सवाल भी है। हमारी अपेक्षा रहेगी कि वो कक्षा 3 का पाठ्यक्रम करे। अवधारणाओं का स्तर के अनुसार एक क्रम भी होता है लेकिन जो बच्चे दो सालों से स्कूल नहीं गए हैं उनको कक्षा 1 व 2 के बुनियादी सिद्धान्त तो सीखने ही होंगे। वो सिखाए बग़ैर कक्षा 3 की अवधारणा सिखाने की कोशिश करना

नाइंसाफ़ी होगी। सिस्टम से कई बार दबाव आता है कि इसे कक्षा 3 का इम्तेहान देना है। लेकिन सिस्टम भी लोगों से ही बनता है। एक शिक्षक होने के नाते मेरे लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि मेरे सारे बच्चे सीखें। कक्षा 3 का इम्तेहान लिखना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

अवधारणाओं के कई बुनियादी पहलू होते हैं और उनको समझना ज़रूरी होता है। जब बच्चा इन बुनियादी बातों को सीखते हुए आगे बढ़ेगा तो सीखना अर्थपूर्ण भी होगा और स्थाई भी। शायद कक्षा का ढाँचा भी इसीलिए बनाया गया होगा। किसी बच्चे ने कक्षा 1-2 में आने वाली बुनियादी अवधारणाएँ नहीं पढ़ीं तो उसके लिए कक्षा 3 की अवधारणाएँ पढ़ना अर्थविहीन ही होगा। जैसे– जिस बच्चे को गिनती नहीं आए, संख्याएँ कैसे आगे बढ़ती हैं यह सोचने-समझने का मौक़ा ही नहीं मिला हो तो उससे हम संख्याओं के जोड़ने, घटाने की बात कैसे करें। बच्चों का इस दौर में काफ़ी लर्निंग लॉस हुआ है। हमें यह पहचानना होगा कि कौन-सी चीज़ें बच्चे नहीं कर पाए, क्या वे भूल गए, पहले उनपर ध्यान देना होगा। और फिर वे जिन कक्षाओं में हैं उनके पाठ्यक्रम पर काम करना होगा। अगर बच्चा कक्षा 3 में है लेकिन उसे कक्षा 1 या 2 की अवधारणाएँ नहीं आतीं तो पहले उनपर काम करना ही होगा। हो सकता है अतिरिक्त समय देना पड़े, ज़्यादा मेहनत करनी पड़े, पर यही मददगार होगा।



चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

पूनम : मैं कुछ बोलना चाहूँगी।

कई बार बच्चा सही उम्र पर सही कक्षा में नहीं जुड़ पाता; कभी गाँव के सुदूर इलाक़े से बच्चे होते हैं, प्रवासी, बंजारे, घुमन्तू होते हैं तो यह समस्या आती है। हमारे यहाँ फिर से स्कूल चालू हुए तब से हमने माना है कि दो महीने तक पहली कक्षा पर कार्य कराएँगे, अगले दो महीने तक ऐसा हम मानकर चल रहे हैं कि उनके साथ लगातार कार्य करेंगे और हमारे शिक्षण कार्य उस तरीक़े के होंगे जो बच्चों को मजबूत आधार देंगे।

श्वेता : दो साल तक बच्चों को कक्षा में पढ़ने-लिखने का अनुभव नहीं मिल पाया है। ऐसे में मुझे लगता है कि सीखने को केवल विषय, अवधारणाओं या कौशलों तक सीमित करके नहीं देखना चाहिए। स्कूल के पूरे समय को, यानी कक्षा के अतिरिक्त समय जैसे मिड डे मील, खेल असेम्बली या पुस्तकालय का समय, इस सब को हम बच्चों के कौशलों को, विषय की अवधारणाओं को समझाने में कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं। क्या हमारे स्कूल में ऐसी प्रक्रियाएँ हैं कि भाषा की 40 मिनट की कक्षा में पढ़ने के अतिरिक्त बच्चों को बाल साहित्य से गुज़रने, पढ़ने के अलग से मौक़े मिलते हैं, क्या कक्षा में ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनमें खेल के दौरान गणित की कुछ अवधारणाएँ बच्चे सीख रहे होते हैं या कुछ इस तरह की प्रक्रियाएँ खेल के समय के दौरान शिक्षक बच्चों के साथ इन्वॉल्व होकर करवाते हैं।

रजनी : मैं कुछ बातों को रेखांकित करना चाहूँगी।

पिछले एक-दो साल का दौर बड़ा ही डरावना और दर्दनाक था। बच्चे घर में बन्द थे और एक दूसरे से बातचीत करने, बाहर जाने

की मनाही थी तो दोस्तों के साथ तो नहीं खेल पाते थे। शहरों में हालात और भी ज़्यादा ख़राब थे। अब बच्चे स्कूल में आए हैं तो पढ़ने की भी चिन्ता है और स्वास्थ्य की भी, लेकिन यह ज़रूरी है कि स्कूल में आते ही बच्चों पर दबाव न डालें कि उन्हें यह सीखना ही है। यह आग्रह रहता है कि दिए गए समय में बच्चे सीख ही जाएँ। एक तरफ़ कहते हैं कि बच्चों पर विश्वास करना चाहिए, बच्चों में बहुत सारा पूर्वज्ञान होता है, बच्चे बहुत चीज़ें सीखना चाहते हैं। लेकिन जब बच्चे कक्षा में आते हैं और एक सिस्टम में आने लगते हैं तो हमारा यह विश्वास कमज़ोर होने लगता है और कहीं-न-कहीं हम इस तरह बढ़ जाते हैं कि नहीं सीखेंगे तो इसे कैसे सिखाएँ। अभी के इस दौर में यह विश्वास हमें और ज़्यादा करने की ज़रूरत है कि वे सीखेंगे और हमें उनको समय देने की ज़रूरत है।

> शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है, शिक्षा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसा हो, अपने शिक्षकों के साथ कैसा हो, शिक्षकों का अन्य शिक्षकों के साथ सम्बन्ध कैसा हो ? यह सम्बन्ध जितना सहज और स्वाभाविक होगा, उतनी ही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया भी सहज और स्वाभाविक होगी।

शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है, शिक्षा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसा हो, अपने शिक्षकों के साथ कैसा हो, शिक्षकों का अन्य शिक्षकों के साथ सम्बन्ध कैसा हो? यह सम्बन्ध जितना सहज और स्वाभाविक होगा, उतनी ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया भी सहज और स्वाभाविक होगी। हमारे संविधान में भी सहभागिता और सहकार की बातें कही गई हैं तो इसलिए क्योंकि हम इस तरह के समाज में रहते हैं। ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि हमें एक ऐसा समाज चाहिए जिसके लोग एक दूसरे के साथ रह सकें। साथ रहने के लिए एक दूसरे की बात को सुनना, समझना और दूसरों को अपनी बात कहने के लिए समय देना, बीच में नहीं बोलना, ये सारी चीज़ें ज़रूरी हैं, इसी को देखते हुए हम समूह में काम करने की बात करते हैं। शुरुआती स्तर पर ही बच्चों के साथ में करें तो आगे चलकर काम आसान होता जाता है। क्योंकि बच्चे जैसे-जैसे बड़े होंगे, कक्षा 4 से 5 में आने लग जाते हैं तो फिर हमको समझ में आने लग जाता है कि हमें किस तरह से समूह में रहना चाहिए और ये जो हमारा समाज है जिससे बच्चे आ रहे हैं, उसपर भी निर्भर बच्चे किस तरह के समूह में रहना चाहते हैं तो इसीलिए आगे बढ़ते-बढ़ते समूह बनाना थोड़ा पेचीदा हो जाता है तो ये चुनौतियाँ साथ में रहती हैं। आप सभी साथी जो इस संवाद में जुड़े उनको धन्यवाद और हमारे साथी जिन्होंने अपनी बातें रखीं, उनको भी धन्यवाद।

पाठकों के विचार



पाठशाला के अंक 9 में कमलेश जोशी का लेख 'प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना' बताता है कि कोई शिक्षक अपने बच्चों को कक्षा में लिखने की प्रक्रियाओं में किस तरह एंगेज करे? बच्चों के लिखे हुए से एक शिक्षक को अपने प्रयासों पर किस तरह का फ़ीडबैक मिल सकता है? और शिक्षक कैसे बच्चों के लेखन को वांछित दक्षताओं की ओर मोड़ सकता है?

लेख में बच्चों के लेखन के उदाहरणों से स्पष्ट तौर पर समझ आता है कि एक शिक्षक होने के नाते बच्चों के लेखन पर कितनी सजगता और सक्रियता से लगातार काम करने की ज़रूरत होती है।

लेखन से पूर्व बच्चों से बातचीत करना, उनको पढ़े हुए पर सोचने, उस पर अपने विचारों को व्यवस्थित करने में भी मदद करनी होती है, और इस काम को निरन्तर करना होता है। तभी हम वास्तविक अर्थों में बच्चों को लेखन के विभिन्न कौशलों को हासिल करने में मदद कर सकते हैं।

राम नरेश गौतम, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, सागर

पाठशाला अंक 9 में प्रो. मधु कुशवाहा का लेख 'जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का सृजन' दिल को छू गया। एक शिक्षक होने के नाते कक्षा में कितनी सावधानी बरती जानी चाहिए, ये गहरे चिन्तन का विषय है। विद्यालय में, रोज़मर्रा के जीवन में जेंडर पूर्वाग्रह अथवा सूक्ष्म या छुपे हुए पूर्वाग्रह एक बड़ी समस्या हैं। इसकी जड़ें हमारे समाज में बहुत गहरे तक पैठी हुई हैं। हमें पता तक नहीं चलता कि हम जेंडर सम्बन्धित कुछ बोल गए हैं। एक बार इसी टॉपिक पर शिक्षकों का प्रशिक्षण चल रहा था जिसमें मास्टर ट्रेनर महोदय जेंडर समानता के पक्ष पर अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होंने पुरुष शिक्षकों से एक प्रश्न किया कि आप में से कितने शिक्षक अपनी पत्नियों के काम में हाथ बँटाते हैं? और उनका इस बात पर ध्यान भी नहीं गया कि वे क्या कह गए। लेकिन मुझसे रहा नहीं गया तो मैंने कहा कि सर, शायद आप घर के कामों के बारे में पूछना चाह रहे थे न कि पत्नियों के। तब जाकर उन्होंने अपने प्रश्न में सुधार किया।

इसी विषय पर एक बार एक मास्टर ट्रेनर ने कहा, "अब लोग लड़के-लड़की में ज़्यादा भेदभाव नहीं करते, सब पढ़े-लिखे हैं। मेरे एक दोस्त की 'केवल' दो बेटियाँ हैं।" अगर दो बेटे होते तब 'केवल' शब्द के लिए कोई स्थान न होता। ये 'केवल' शब्द सबकुछ बयाँ कर गया।

लेखिका द्वारा बहुत-से उदाहरण दिए गए हैं जिनमें एक छात्राध्यापक द्वारा पतिव्रता स्त्री के गुण पूछे गए हैं। इस प्रकार के प्रश्न, कक्षा हो या प्रशिक्षण कक्ष या चर्चा-परिचर्चा, हर जगह जहाँ भी संस्कारों की बात आती है, उम्मीद लड़कियों से ही की जाती है। पत्नी परायण पति और संस्कारवान लड़के के बारे में सुनने को नहीं मिलता।

अनीता ध्यानी प्रधानाध्यापिका राजकीय प्राथमिक विद्यालय देवराना, ज़िला पौड़ी, उत्तराखंड

मुकेश मालवीय के लेख 'क्या गणित आपको अन्धविश्वास सिखाता है?' में मुझे व्यक्तिगत तौर पर कुछ तथ्य उजागर होते दिखे- हमारे विचारों को परिवेश में कई प्रकार से पोषण मिल रहा होता है, जिसमें एक ओर हमारा घर, हमारा परिवार है जिसमें हम एक प्रकार की जीवनशैली जी रहे होते हैं, और इसमें हमारी धारणाएँ बन रही होती हैं। दूसरी ओर, हमारा समाज है जिसमें हम जीते हैं, वो किस प्रकार से हमारी संस्कृति के धागों को रंग देता है। यदि कुछ 15 या 20 वर्ष पूर्व चलें तो हमारा व्यक्तिगत समाज हमारे आसपड़ोस और निजी रिश्तेदारों तक ही सीमित था। हाँ, हम दूरदर्शन में सम्पादित समाचारों को भी देखते थे जिनसे हमारे विचारों का एक दायरा बनता था। इसके साथ-साथ एक उर्वरक स्थान और भी है 'विद्यालय', जहाँ विचारों को तर्क की छन्नी से छानकर समझना, विचारों को स्वयं गढ़ना व समझना जैसे प्रयास होते हैं। बच्चों के मन में अकसर विचारों का द्वन्द्व चलता रहता है और अधिक पोषित विचार, विश्वास में परिवर्तित हो जाते हैं।

आज के मौजूदा समाज में एक और नया आयाम जुड़ा है और वो है सोशल मीडिया, जिसमें हर रोज़ अनगिनत सन्देशों का आदान-प्रदान होता है। इसमें एक सबसे बड़ी समस्या यह भी है कि ये सिर्फ़ सन्देश तक ही सीमित नहीं होते वरन् विचारों का निर्माण करने की पूरी-पूरी कोशिश कर रहे होते हैं। इसमें धार्मिक या राजनीतिक व्यक्तिगत उद्‌देश्य भी शामिल होते हैं, जिसमें अब तार्किक रूप से भी विचारों को सम्बल प्रदान किया जाने लगा है ताकि व्यक्ति के मन के भीतर चल रहे मानसिक द्वन्द्व को भी समाप्त किया जा सके और विचार विश्वास में तबदील हों। एक गणितीय दृष्टिकोण या सोच का प्रयोग इस प्रकार के तर्कहीन विचारों को सत्य की कसौटी पर परखने का ज़रिया बन सकता है।

लेख ने यह विचार अंकुरित किया है कि मौजूदा परिवेश में सोच-समझकर इन्हें भी छात्रों के बीच ले जाना चाहिए ताकि गणित अन्धविश्वास को तर्क की कसौटी पर परख सके और विश्वास का पर्याय बने।

नरेन्द्र कोठियाल, शिक्षक अज़ीम प्रेमजी स्कूल उत्तरकाशी

कमलेश चंद्र जोशी के लेख की सबसे ख़ास बात है कि यह प्राथमिक शालाओं के भ्रमण के दौरान प्राप्त वास्तविक व जीवन्त अनुभवों से प्रेरित है। इस लेख में बच्चों के द्वारा किए गए लेखन कार्य के जो जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं उन उदाहरणों को शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ा कोई भी व्यक्ति या शिक्षक बच्चों के साथ लेखन प्रक्रिया का हिस्सा बनकर महसूस कर सकता है। लेखन जैसा महत्त्वपूर्ण विषय प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक बच्चे के लिए आवश्यक है, क्योंकि लेखन का सीधा सम्बन्ध बच्चे के पठन कौशल से होता है। यदि बच्चा धारा प्रवाह पढ़ना तो जानता है परन्तु लिखित अभिव्यक्ति में कुछ समस्याएँ हैं तो एक समय ऐसा आता है कि बच्चे का पठन कौशल भी उसी स्तर का हो जाता है जिस स्तर का उसका लेखन कौशल होता है।

आज इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि बच्चे समझ के साथ लिखें व लेखन में समझ के साथ-साथ विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक, तर्कपूर्ण, रचनाशीलता व स्पष्ट लिखाई जैसी दक्षताएँ भी परिलक्षित हों। बच्चे के अन्दर लेखन की समझ विकसित करने के लिए एक शिक्षक की भूमिका इस प्रकार महत्त्वपूर्ण होती है कि शिक्षक लेखन की कक्षागत प्रक्रियाओं में किस तरह की चर्चा-परिचर्चा, विषयवस्तु व सन्दर्भों का प्रयोग करता है। लेख में इस मुद्‌दे को भी उजागर किया गया है कि बच्चों के साथ लेखन कार्य करते समय कहीं-न-कहीं शिक्षक बच्चों के लेखन के अवसरों को सीमित कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप बच्चे उतना व्यापक नहीं सोच पाते हैं जितना हम उनसे अपेक्षा कर लेते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि लेखन के पूर्व की चर्चा-परिचर्चा व सन्दर्भों को शिक्षक

और भी स्वस्थ व समृद्ध बनाए जिससे बच्चों का लेखन भी अपेक्षाकृत दिन-प्रतिदिन समृद्धता की ओर अग्रसर रहे। लेख में बच्चों के लेखन कार्य के जो भी नमूने दर्शाए गए हैं उनको समझने की कोशिश करें तो यह बात समझ आती है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों द्वारा जिस प्रकार का लेखन कार्य अपेक्षित है वह उनके लेखन के नमूनों में परिलक्षित नहीं होता है।

लेख पढ़कर लेखन की प्रक्रियाओं व चुनौतियों को बहुत बारीक़ी से समझा जा सकता है व इस लेख में दिए गए उदाहरणों व सुझावों के आधार पर लेखन से सम्बन्धित कक्षागत अभ्यासों को बेहतर बनाया जा सकता है।

अभिषेक कुमार शुक्ला, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, टिहरी गढ़वाल

क्षमा यादव, खेमप्रकाश यादव, निदेश सोनी द्वारा लिखित लेख 'मोहल्ले में अपनी जगह : मोहल्ला एलएसी' पढ़कर कोविड में स्कूल बन्दी के दौरान सामुदायिक प्रयासों से चलने वाली अनौपचारिक शिक्षण पहल के एक ढाँचे के बारे में जानकारी हुई। एकलव्य संस्था ने स्थिति को भाँपते हुए सही समय पर मोहल्ला स्तर पर सीखने-सिखाने का एक व्यवस्थित प्रयास शुरू कर दिया था। इससे ज़रूरतमन्द बच्चों को अपने ही परिवेश में सहज रूप से गुणवत्ता के साथ अपनी पढ़ाई जारी रखने के मौक़े मिले। यह एक तरह से दूरदर्शिता भी साबित हुई क्योंकि लम्बे समय तक स्कूल खुलने और सबकुछ सामान्य होने के कोई आसार नज़र नहीं आ रहे थे।

कुँवर सिंह, एलईसी प्रतिभागी, भोपाल

पाठशाला भीतर और बाहर के आठवें अंक में मुकेश मालवीय की कहानी 'घर जाने की पूरी छुट्टी' में स्कूल को लेकर वर्तमान में बच्चों की जो मनःस्थिति है वह बेहतर ढंग से कही गई है। पहले जहाँ बच्चे स्कूल से छुट्टी लेना चाहते थे, उसके विपरीत आज उन्हें इन्तज़ार है कि कब स्कूल खुलें और वे स्कूल पहुँचें। आमतौर पर स्कूल एक ऐसी जगह के रूप में देखा जाता है जहाँ बच्चे पढ़ने जाते हैं, पर बच्चों के नज़रिए में स्कूल दोस्तों से मिलने का ठिया और बदमाशियों की जगह भी है। इस तरह की कहानियाँ हमें बच्चों को समझने का मौक़ा देती हैं और स्कूल से उनकी अपेक्षाओं का ब्योरा भी हमारे सामने रखती हैं। इस कहानी को साझा करने के लिए *पाठशाला* टीम और लेखक मुकेश मालवीय को बहुत-बहुत धन्यवाद। अपेक्षा है आगे भी हमें ऐसी कहानियाँ पढ़ने को मिलेंगी।



नीतू यादव, लाइब्रेरी एजुकेटर, भोपाल

पाठशाला के नौवें अंक में प्रकाशित सभी लेख विचारों को समृद्ध करने वाले हैं। इसमें प्रकाशित दो लेख मुझे अधिक उपयोगी लगे क्योंकि भाषा शिक्षण की प्रक्रिया में बच्चों के साथ लिखने को लेकर सबसे अधिक जूझना पड़ता है। लिखने से जुड़े दोनों लेख इस दिशा में ढेरों आसान गतिविधियाँ सुझाते हैं और समझ को परिपक्व बनाते हैं। कमलेश जोशी के लेख में यह समझने में मदद मिली कि छात्रों को केवल कहानियों, अनुभव आदि के माध्यम से लिखने के मौक़े देना अच्छा लिखना नहीं कहा जा सकता। लेखन को समझकर एवं पाठ्यक्रम से समेकित करके देखा जाना चाहिए। लिखने से पहले छात्रों के साथ विषयवस्तु पर ढेर सारी बातचीत करना ज़रूरी है, जिससे लिखते समय कल्पनाशीलता और समझ को विस्तार मिल सके। लेखन की विषयवस्तु व संगठन पर ध्यान दिया



जाना ज़रूरी है। निश्चित ही चित्र, घटना और अनुभव आधारित बातों से लेखन को और सुदृढ़ किया जा सकता है। शिक्षक द्वारा लिखने की प्रक्रिया में छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

अवनीश कुमार मिश्र का लेख 'लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर' में शामिल विचार और छात्रों द्वारा लिखे लेखन के नमूने मन को आकर्षित करते हैं। ये लिखने के सन्दर्भ में सरल से बेहतर की दिशा में गतिविधियाँ सुझाते हैं। सीखने की प्रक्रिया में छात्रों की सहभागिता को प्रोत्साहित करना ज़रूरी है ताकि उन्हें मौलिक व स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर मिलें। सीखने की प्रक्रिया में छात्रों को भाषा के विविध रूपों व बारीक़ियों से अवगत कराना ताकि भाषाई दक्षताओं का लगातार विकास हो सके। इसके लिए पाठ्यपुस्तक के साथ बाल साहित्य, अख़बार, बच्चों के परिवेश के अनुभव महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। शुरुआती लेखन में छोटी-छोटी आकृतियाँ बनाना, आड़ी तिरछी रेखाएँ खींचना, ध्वनि और लिपि के संकेतों में सम्बन्ध स्थापित करना जैसे महत्त्वपूर्ण प्रयास लिखने की प्रक्रिया को आनन्ददायी बना सकते हैं। छात्रों को संवाद लिखना, चित्र पर वाक्य लिखना, अधूरी कहानी को पूरा करना, अपनी पसन्द के छोटे-छोटे वाक्य लिखना जैसे क्रियाकलाप छात्रों की मौलिकता व स्वतंत्र अभिव्यक्ति को उचित माहौल प्रदान करेंगे। *पाठशाला भीतर और बाहर* के अगले अंक की प्रतीक्षा रहेगी।

रजनी थपलियाल, राजकीय प्राथमिक विद्यालय मन्ज्याड़गाँव, चम्बा ब्लॉक, टिहरी गढ़वाल

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका का 9वाँ अंक पढ़ा। सभी लेख बहुत ही सारगर्भित और सिखाने वाले लगे। इन सभी लेखों में से कुछेक का ज़िक्र करना चाहूँगा। मधु कुशवाहाजी का शिक्षणशास्त्रीय लेख 'जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का सृजन' बहुत ही रोचक लगा। यह हमें सोचना ही होगा कि शिक्षक जिनपर बच्चों को शिक्षित करने का दायित्व है वो ख़ुद जेंडर के मसलों से कितने घिरे हुए हैं? यह बहुत ही ज़रूरी है कि शिक्षक प्रशिक्षण में जेंडर के मुद्दे को शामिल किया जाए और नारीवादी नज़रिए से मुद्दों को देखा व समझा जाए।

मुझे याद है जब नौवीं और दसवीं के बच्चों को विजिट पर ले जाने की बात हुई तो शिक्षकों में से एक ने कहा था, 'महेश सर, इस उम्र के बच्चों को घुमाने ले जाना ठीक नहीं'। मुझे लगता है ये वाक्य जेंडर भाव से ग्रसित था। ऐसे कई उदाहरण इस लेख को पढ़ने के दौरान मुझे याद भी आए।

दूसरा लेख 'लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर' मुझे काफ़ी अपना-सा लगा। अपने शिक्षण के दौरान मैंने इस लेख में लिखित काफ़ी गतिविधियों का सफल प्रयोग किया है। हाँ, यह लेख पढ़ते हुए यह भी ताज़ा हुआ कि मैंने भी कुछ समय तक कक्षा अध्यापन के दौरान लाल स्याही का उपयोग किया है। पढ़ते हुए स्पष्ट रूप से समझ आया कि लाल स्याही पहली नज़र में ध्यान कहीं और ले जा सकती है। इस लेख के लिए अविनाशजी का शुक्रिया।

'बोलते चित्र : अधूरी बातों को पूरा करने का ज़रिया' में रुबीनाजी ने अलग-अलग समुदायों के बच्चों के चित्रों के माध्यम से जो चित्रण प्रस्तुत किया है वो चित्रों को देखने, समझने और पढ़ने के एक जुदा नज़रिए को बयाँ करता है। यह लेख कहता है कि चित्र सिर्फ़ चित्र नहीं हैं बल्कि अपने-आप में एक पूरी कहानी हैं यदि हम चित्रों की भाषा को समझ पाए तो।

पूरी टीम को बेहतरीन सामग्री के प्रकाशन के लिए तहेदिल से शुक्रिया।

महेश झरबड़े, मुस्कान ,भोपाल

पाठशाला अंक 9 में अवनीश कुमार मिश्र ने अपने लेख 'लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर' में बच्चों के लेखन को कैसे सुदृढ़ एवं सहज बनाया जाए, के बारे में बात की है।

सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना, भाषा के इन सभी कौशलों में लेखन एक महत्त्वपूर्ण और जटिल कौशल है। बच्चे अपने परिवेश से मौखिक कौशल तो अर्जित कर ही लेते हैं जिसे कक्षाओं में और भी विस्तार दिया जाता है, परन्तु लेखन सम्बन्धी कौशल का विस्तार कक्षाओं में ही शुरू होता है। ऐसे में ज़रूरी होता है कि बच्चों में इस कौशल के विकास के लिए कुछ रोचक एवं रचनात्मक गतिविधियों को कक्षा शिक्षण का हिस्सा बनाया जाए ताकि बच्चों में लेखन के प्रति रुचि जागृत हो।

लेख, शिक्षकों की कक्षागत प्रक्रियाओं एवं भाषा सम्बन्धी मान्यताओं पर भी सवाल उठाता नज़र आता है, साथ ही कुछ ऐसे सुझाव भी दिए गए हैं कि शिक्षकों को लेखन को लेकर किस तरह की तैयारियाँ करने एवं किन मान्यताओं से ऊपर उठकर सोचने की ज़रूरत है।

लेखक *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* एवं शिक्षाविद् कृष्ण कुमार द्वारा कही गई बातों का हवाला देते हुए कह रहे हैं कि लेखन केवल किन्हीं विशेष प्रकार की आकृतियों को कॉपी पर उकेरना भर नहीं है, बल्कि लेखन के माध्यम से हम अपने विचारों एवं अनुभवों को क्रमबद्ध एवं रचनात्मक तरीक़े से व्यक्त कर सकते हैं और भविष्य के लिए सुरक्षित रख सकते हैं। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि बच्चे लेखन को अभिव्यक्ति और विचारों को व्यक्त करने का माध्यम समझकर इसे विकसित करें, न कि ऐसे कौशल के रूप में जिसके द्वारा पाठ्यपुस्तक या किसी परीक्षा में दिए गए प्रश्नों के किताबी जवाब दिए जा सकते हैं।

यामिनी वर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, सागर

कमलेश जोशी के लेख 'प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना : कुछ अवलोकन' से यह समझ बनी कि बच्चों के लेखन को एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाए। इसके लिए ज़रूरी है कि पहले विषयवस्तु और कल्पनाशीलता को सुदृढ़ बनाया जाए और अन्त में व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों को सुधारने का प्रयास किया जाए। बच्चों को लिखने से पहले पढ़ने के अवसर दिए जाएँ और उनसे संवाद किया जाए ताकि उनके शब्द भण्डार में सुदृढ़ता आए। मेरा भी कुछ ऐसा ही अनुभव है। शिक्षकों को भी अनुभव और घटनाओं को स्वयं लिखकर बच्चों के साथ साझा करना चाहिए, ताकि उनकी समझ का विस्तार हो और उनके लेखन में निरन्तर जीवन्तता आए। मैं अपनी कक्षा में इस तरह के प्रयास करूँगी।

इन्दु पंवार, प्रधान अध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय गिरगांव, पौड़ी गढ़वाल

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर *पाठशाला भीतर और बाहर* में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उसमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि *पाठशाला भीतर और बाहर* का यह दसवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ



